अधोलोक चित्रण

क्र.	पृथिवी	नरकनाम	बिल	जघन्य आयु	उत्कृष्ट आयु	शरीर की ऊँचाई
१.	रत्नप्रभा	धम्मा	३० लाख	१०,००० वर्ष	१ सागर	७ ध. ३ हा. ६ अंगुल
२.	शर्करा प्रभा	वंशा	२५ लाख	१ सागर	३ सागर	१५ध. २हा.१२अंगुल
३.	बालुका प्रभा	मेघा	१५ लाख	३ सागर	७ सागर	३१ ध. १ हाथ
४.	पंक प्रभा	अंजना	१० लाख	७ सागर	१० सागर	६२ ध. २ हाथ
५.	धूम प्रभा	अरिष्टा	३ लाख	१० सागर	१७ सागर	१२५ धनुष
६.	तम: प्रभा	मघवा	५ कम १लाख	१७ सागर	२२ सागर	२५० धनुष
७.	महातम: प्रभा	माधवी	मात्र ५	२२ सागर	३३ सागर	५०० धनुष

क्र.	अ.ज्ञान का क्षेत्र	लेश्या	जन्म अन्तर	पटल	मोटाई	म.लो से दूरी
१.	चार कोस	जघन्य कापोत	चौबीस मुहूर्त	१३	१,८०,००० यो	-
२.	३.१/२ "	मध्यम कापोत	सात दिन	११	३२,००० यो	१ राजू
३.	३ कोस	उ.का.ज.नी.	१५ दिन	९	२८,००० यो	२ राजू
४.	२.१/२ "	मध्यम नील	१ माह	७	२४,००० यो	३ राजू
५.	२ कोस	उ.नी.ज.कृ.	२ माह	५	२०,००० यो	४ राजू
६.	१.१/२ "	मध्यम कृ.	४ माह	३	१६,००० यो	५ राजू
७.	१ कोस	उत्तम कृष्ण	६ माह	१	८००० यो	६ राजू

क्र.	मिट्टी की दुर्गंध	लगातार उत्पन्न	जीव मरके क्या हो सकते हैं
१.	१ कोस के भीतर के जीव मर जायें	८ बार	तीर्थंकर
२.	१.१/२ " " "	७ बार	"
३.	२ कोस " " "	६ बार	"
४.	२.१/२ " " "	५ बार	मोक्षगामी
५.	३ कोस " " "	४ बार	मुनिव्रत/सकलसंयमी
६.	३.१/२ " " "	३ बार	देशविरति
७.	४ कोस " " "	२ बार	मिथ्यादृष्टि तिर्यंच

क्र.	कौन जीव कहाँ तक उत्पन्न हो सकते हैं	उत्पाद व्यास	बाहुल्य	ऊँचे उछलते हैं
१.	असंज्ञी जीव	१ कोस	अपनी	७ यो ३.१/४ कोस
२.	सरीसृप	२ कोस	अपनी	१५ यो २.१/२ को.
३.	पक्षी	३ कोस	शरीर	३१ यो १ कोस
४.	भुजंगादि	१ योजन	अवगाहना	६२ यो २ को.
५.	सिंह	२ योजन	से पाँच	१२५ योजन
६.	स्त्री	३ योजन	गुना है।	२५० योजन
७.	मत्स्य एवं मनुष्य	१०० योजन		५०० योजन

तृतीय अध्याय

अधोलोक का वर्णन

सात पृथिवियाँ (सात नरक)

रत्न-शर्करा-बालुका-पङ्कधूम-तमो-महातमःप्रभाभूमयो घनाम्बु-वाताकाश-प्रतिष्ठाः सप्ताऽधोऽधः ॥१॥

अर्थ- (रत्नप्रभा) रत्नप्रभा, (शर्कराप्रभा) शर्कराप्रभा, (बालुकाप्रभा) बालुकाप्रभा, (पङ्कप्रभा) पङ्कप्रभा, (धूमप्रभा) धूमप्रभा, (तमोप्रभा) तमःप्रभा और (महातमः प्रभाः) महातमःप्रभा (भूमयः) ये भूमियाँ (सप्त) सात हैं। और वे क्रम से (अधोऽधः) नीचे नीचे (घनाम्बुवाता-काशप्रतिष्ठाः) घनोदधिवातवलय, घनवातवलय, तनुवातवलय, और आकाश के आधार (सन्ति) हैं।

विशेषार्थ- अधोलोक में रत्नप्रभा, शर्कराप्रभा, बालुकाप्रभा, पङ्कप्रभा, धूमप्रभा, तमःप्रभा, और महातमःप्रभा ये सात प्रथिवियाँ हैं। ये क्रम से एक के नीचे एक हैं। इनमें क्रम से धम्मा, वंशा, मेघा, अंजना, अरिष्टा, मघवा और माघवी ये सात नरक हैं।

रत्नप्रभा पृथ्वी एक लाख अस्सी हजार योजन मोटी है। इसकी मोटाई के तीन भाग हैं। जिन्हें खरभाग, पंकभाग, और अब्बहुलभाग कहते हैं। खरभाग सोलह हजार योजन मोटा है। उसमें ऊपर और नीचे एक-एक हजार योजन छोड़ कर बीच के चौदह हजार योजन में असुरकुमारों और राक्षसों के सिवाय शेष ९ प्रकार के भवनवासी व ७ प्रकार के व्यन्तर देव रहते हैं। पंकभाग में असुरकुमार और राक्षस रहते हैं। और अब्बहुल भाग में प्रथम नरक है।

खरभाग की मोटाई सोलह हजार योजन, पंकभाग की चौरासी हजार योजन और अब्बहुलभाग की मोटाई १-१ योजन छोड़कर अस्सी हजार योजन है। शर्करा प्रभा पृथ्वी की मोटाई बत्तीस हजार योजन, बालुका प्रभा पृथ्वी की मोटाई अट्ठाईस हजार योजन, पंकप्रभा पृथ्वी की मोटाई चौबीस हजार योजन, धूमप्रभा पृथ्वी की मोटाई बीस हजार योजन, तमःप्रभा पृथ्वी की मोटाई सोलह हजार योजना और महातमःप्रभा पृथ्वी की मोटाई आठ हजार योजन है।

ये भूमियाँ घनोदधिवातवलय के आधार हैं, घनोदधिवातवलय घनवातवलय के आधार है। घनवातवलय तनुवातवलय के आधार है। और तनुवातवलय आकाश के आधार है। तथा आकाश अपने ही आधार है। क्योंकि आकाश सबसे बड़ा और अनन्त है। इसलिये उसका आधार कोई दूसरा नहीं हो सकता।

प्रश्न- अधोलोक किसके समान होता है ?

उत्तर- अधोलोक "वेत्रासन" के समान होता है।

प्रश्न - अधोलोक कहाँ पर स्थित है और कैसा होता है ?

उत्तर - मंदराचल के मूल से नीचे का क्षेत्र अधोलोक कहलाता है। अधोलोक चार राजू मोटा और जगत्प्रतर प्रमाण लंबा चौड़ा होता है।

प्रश्न - इन तीनों वालवलयों की मोटाई कितनी होती है ?

उत्तर - घनोदधिवातवलय, घनवातवलय और तनुवातवलय बीस-बीस हजार योजन मोटे हैं। तीनों वातवलयों की मोटाई साठ हजार योजन होती है।

प्रश्न - मध्य लोक से नरकों की पृथ्वी का अंतराल कितना-कितना होता है ?

उत्तर - मध्यलोक से दूसरे नरक तक की पृथ्वी का अंतराल कुछ कम एक राजू प्रमाण होता है। इसी प्रकार दूसरे नरक की पृथ्वी से तीसरे नरक तक की पृथ्वी का अंतराल भी कुछ कम एक राजू प्रमाण होता है। इसी तरह एक एक राजू के अंतराल में क्रम से सातवें नरक की पृथ्वी होती है। सातवे नरक की पृथ्वी कुल छः राजू नीचे अंतराल में है।

प्रश्न - सातवें नरक की पृथ्वी के नीचे का प्रमाण कितना है ?

उत्तर - सातवें नरक की पृथ्वी के नीचे का प्रमाण एक राजू है जिसमें केवल निगोदिया जीव ही रहते हैं।

प्रश्न - नरक किसे कहते हैं ?

उत्तर - नारकियों के रहने के स्थान को नरक कहते हैं।

प्रश्न - नारकी किसे कहते हैं ?

उत्तर - अत्यधिक मात्रा में पाप कर्मों के फलस्वरूप अनेकों प्रकार के असह्य दुःखों को भोगने वाले जीवों को नारकी कहते हैं। अथवा नरकों में रहने वाले जीवों को नारकी कहते हैं।

प्रश्न - नरकों में कितने पटल होते हैं ?

उत्तर - प्रथम नरक में तेरह पटल, दूसरे नरक में ग्यारह पटल, तीसरे नरक में नौ पटल, चौथे नरक में सात पटल, पाँचवें नरक में पाँच पटल, छठें नरक में तीन पटल और सातवें नरक में एक पटल है। इस प्रकार कुल मिलाकर नरकों में उनञ्चास पटल होते हैं।

सात पृथिवियों में नरकों (बिलों) की संख्या

तासु त्रिंशत्पंचविंशतिपंचदशदशत्रिपंचोनैक-नरक-शतसहस्राणि पञ्च चैव यथाक्रमम्॥२॥

अर्थ- (तासु) उन पृथिवियों में (यथाक्रमम्) क्रम से (त्रिंशत् शतसहस्राणि) तीस लाख, (पञ्चविंशति) पच्चीस लाख, (पञ्चदश) पन्द्रह लाख, (दश) दस लाख, (त्रि) तीन लाख, (पञ्चोनैक) पांच कम एक लाख (च) और (पञ्च एव) पांच ही नरक-बिल हैं। ये बिल जमीन में गड़े हुये ढोल की पोल के समान होते हैं और वे गोल, चौकोण वा त्रिकोण आदि अनेक प्रकार के होते हैं।

भावार्थ- रत्नप्रभा पृथिवी में ३० लाख, शर्कराप्रभा पृथिवी में २५ लाख, बालुकाप्रभा पृथिवी में १५ लाख, पंकप्रभा पृथिवी में १० लाख, धूमप्रभा पृथिवी में ३ लाख, तमःप्रभा पृथिवी में ५ कम १ लाख, महातमःप्रभा पृथिवी में मात्र ५ बिल हैं।

प्रश्न - बिल कितने प्रकार के होते हैं ?

उत्तर - बिल तीन प्रकार के होते हैं - १. इन्द्रक बिल, २. श्रेणीबद्ध बिल, ३. प्रकीर्णक बिल।

प्रश्न - इन्द्रक बिल किसे कहते हैं ?

उत्तर - सभी बिलों के ठीक मध्य के बिलों को इन्द्रक बिल कहते हैं।

प्रश्न - श्रेणीबद्ध बिल किसे कहते हैं ?

उत्तर - आकाश प्रदेशों की श्रेणी के अनुसार दिशा और विदिशाओं में स्थित बिलों को श्रेणीबद्ध बिल कहते हैं ?

प्रश्न - प्रकीर्णक बिल किसे कहते हैं ?

उत्तर - फूलों के समान बिखरे हुए बिलों को प्रकीर्णक बिल कहते हैं।

प्रश्न - नरक में नारकी जीवों की विक्रिया किस प्रकार की होती है ?

उत्तर - छठें नरक तक के नारकियों के त्रिशूल, चक्र, तलवार, मुद्गर, परशु, भिण्डीपाल आदि अनेक आयुधरूप एकत्व विक्रिया होती है। सातवें नरक में गाय बराबर कीड़े, लोहू, चींटी आदि रूप से एकत्व विक्रिया होती है।

प्रश्न - नारकियों की जन्मभूमियों का विस्तार कितना होता है ?

उत्तर - नारकियों की जन्मभूमियों का विस्तार जघन्य रूप से पाँच कोस, उत्कृष्ट रूप से चार सौ कोस और मध्यम रूप से दस-पन्द्रह कोस होता है।

नारका नित्याशुभतरलेश्या परिणामदेह-वेदना-विक्रियाः ॥३॥

अर्थ- नारकी जीव हमेशा ही अत्यन्त अशुभ लेश्या, अशुभ परिणाम, अशुभ शरीर, अशुभ वेदना और अशुभ विक्रिया के धारक होते हैं।

परिणाम से यहाँ पुद्गलों का स्पर्श, रस, गन्ध, रूप और शब्दरूप परिणाम लिया गया है। ये सातों नरकों में उत्तरोत्तर तीव्र दुःख के कारण और अशुभतर हैं।

देह - नरकों में नारकियों के शरीर अशुभ नाम कर्म के उदय से होने के कारण उत्तरोत्तर अशुभ हैं।

वेदना - नारकियों के सदा असाता वेदनीय कर्म का ही उदय रहता है और वहाँ वेदना के बाह्य निमित्त शीत और उष्णता की उत्तरोत्तर अति तीव्रता है, जिससे उन्हें उत्तरोत्तर तीव्र वेदना होती है।

विक्रिया - उनकी विक्रिया भी उत्तरोत्तर अशुभ होती है। वे अच्छा करने का विचार करते हैं, परन्तु होता है बुरा। यदि विक्रिया से शुभ बनाना चाहते हैं तो बन जाता है अशुभ।

सामान्य नियम यह है कि तिर्यञ्च और मनुष्य ही नरकों में उत्पन्न होते हैं। देव और नारकी नरकों में उत्पन्न नहीं होते।

प्रश्न - बिलों में कितने बिल उष्ण (गरम) और कितने बिल ठण्डे होते हैं ?

उत्तर - रत्नप्रभा पृथ्वी से लेकर पाँचवी पृथ्वी तक व्यासी लाख पच्चीस हजार बिल तो उष्ण (गरम) होते हैं तथा एक लाख पिचत्तर हजार बिल ठण्डे होते हैं।

अर्थात प्रथम पृथिवी से चौथी पृथिवी तक के बिल ऊष्ण हैं। पाँचवीं पृथिवी के 2 लाख पच्चीस हजार बिल उष्ण हैं तथा पिचहत्तर हजार बिल ठण्डे हैं। छठी और सातवीं पृथिवी के बिल ठण्डे ही हैं।

प्रश्न - नरकों में नारकी जीवों की कौन सी लेश्याएँ होती हैं ?

उत्तर - नरकों में नारकी जीवों के कृष्ण, नील और कापोत ये अशुभ लेश्यायें होती हैं। पहले, दूसरे व तीसरे नरक के कुछ हिस्से तक कापोत लेश्या होती है। शेष तीसरे, चौथे, और पाँचवें नरक के कुछ हिस्से तक नील लेश्या होती है और शेष पाँचवें छठें, और सातवें नरक के नारकियों के कृष्ण लेश्या होती है।

प्रश्न - नारकी जीवों का आहार पानी किस प्रकार का होता है ?

उत्तर - रत्नप्रभा पृथ्वी के नारकी जीव कड़वी और तीखी मिट्टी का आहार करते हैं।

उससे नीचे की पृथ्वियों के नारकी जीव सड़ा हुआ अशुभ एवं दुर्गन्ध युक्त आहार करते हैं। अत्यंत तीक्ष्ण खारा व गरम वैतरणी नदी का जल पीते हैं।

प्रश्न - नरकों में कितने प्रकार के दु:ख होते हैं ?

उत्तर - नरकों में चार प्रकार के दु:ख होते हैं - १. क्षेत्र जनित दु:ख, २. शारीरिक दु:ख, ३. मानसिक दु:ख और ४. असुरकृत दु:ख।

प्रश्न - नरकों में नारकी जीवों को कितनी भूख लगती है ?

उत्तर - नरकों में नारकी जीवों को इतनी भूख लगती है कि समस्त पुद्गलों का समूह (तीनों लोकों का अनाज भी) उस भूख को शांत करने में समर्थ नहीं है। परन्तु वहाँ खाने के लिये एक दाना भी नहीं मिलता।

प्रश्न - नरकों में नारकी जीवों को प्यास कितनी लगती है ?

उत्तर - नरकों में नारकी जीवों को इतनी प्यास लगती है कि समस्त समुद्रों का जल भी पीयें तो प्यास नहीं मिटे, परन्तु पीने के लिए एक बूंद पानी भी नहीं मिलती।

प्रश्न - धम्मा आदिक पृथ्वियों में आहार की दुर्गन्ध कैसी है ?

उत्तर - धम्मा आदिक पृथ्वियों में जो आहार (मिट्टी) है उसकी गंध से एक कोस के भीतर स्थित जीव मर सकते हैं। इसके आगे शेष द्वितीय आदि पृथ्वियों में इसकी घातक शक्ति आधा-आधा कोस और भी बढ़ती जाती है।

प्रश्न - नरकों में उष्णता कितनी रहती है ?

उत्तर - नरकों में इतनी उष्णता है कि यदि उष्ण बिल में मेरु के बराबर लोहे का शीतल पिण्ड डाल दिया जाये, तो वह तल प्रदेश तक पहुँच कर बीच में ही मोम के टुकड़े के समान पिघलकर नष्ट हो जाये।

प्रश्न - नरकों में शीत (ठण्ड) कितनी होती है ?

उत्तर - नरकों में इतनी शीत (ठण्ड) होती है कि पूर्वोक्त मेरु पर्वत के बराबर लोहे का उष्ण पिण्ड शीत बिल में डाल दिया जाये तो वह भी तल प्रदेश तक न पहुँच कर बीच में ही नमक के टुकड़े के समान विलीन हो जाये (जम जाये)।

प्रश्न - प्रथम नरक के नारकी जीवों के शरीर की ऊँचाई कितनी होती है ?

उत्तर - प्रथम नरक के नारकी जीवों के शरीर की ऊँचाई सात धनुष तीन हाथ छ: अंगुल प्रमाण होती है।

प्रश्न - दूसरे आदि नरक के नारकी जीवों के शरीर की ऊँचाई कितनी होती है ?

उत्तर - दूसरे नरक के नारकी जीवों के शरीर की ऊँचाई पन्द्रह धनुष दो हाथ बारह अंगुल होती है। तीसरे नरक के नारकी जीवों के शरीर की ऊँचाई इकत्तीस धनुष एक हाथ होती है। चौथे नरक के नारकी जीवों के शरीर की ऊँचाई बासठ धनुष दो हाथ होती है। पाँचवें नरक के नारकी जीवों के शरीर की ऊँचाई एक सौ पच्चीस धनुष होती है। छठें नरक के नारकी जीवों के शरीर की ऊँचाई दो सौ पचास धनुष होती है। सातवें नरक के नारकी जीवों के शरीर की ऊँचाई पाँच सौ धनुष होती है।

प्रश्न - एक धनुष कितने प्रमाण का होता है ?

उत्तर - एक धनुष चार हाथ प्रमाण का होता है।

प्रश्न - एक हाथ कितने प्रमाण का होता है ?

उत्तर - एक हाथ चौबीस अंगुल के प्रमाण का होता है।

नारकों में पारस्परिक दुःख

परस्परोदीरित-दुःखाः ॥४॥

अर्थ- नारकी जीव (परस्परोदीरितः दुःखाः) आपस में एक दूसरे को दुःख देते हैं और वे कुत्तों की तरह परस्पर में एक दूसरे कुत्ते के समान लड़ते हैं।

नोट- नरकों में भयानक दुःख और चीर फाड़ होने पर भी असमय में मृत्यु नहीं होती। क्योंकि वहाँ अकाल मरण नहीं होता है।

प्रश्न - अम्बाबरीष नामक देव कौन से नरक तक जीवों को दुःख उत्पन्न कराते हैं ?

उत्तर - अम्बाबरीष देव, पहले, दूसरे तथा तीसरे नरक तक के जीवों को दुःख उत्पन्न कराते हैं।

नरकों में असुरकुमार देवों कृत दुःख

संक्लिष्टासुरोदीरित-दुःखाश्च प्राक् चतुर्थ्याः ॥५॥

अर्थ- (च) और (चतुर्थ्याः प्राक्) चौथी पृथिवी से पहले अर्थात् तीसरी पृथिवी पर्यन्त (ते) वे नारकी (संक्लिष्टअसुर) संक्लेश परिणाम वाले अम्बाबरीष जाति के असुरकुमार देवों के द्वारा (उदीरित) उत्पन्न किया गया है (दुःखाः) दुःख जिनको ऐसे (भवन्ति) होते हैं। अर्थात् तीसरे नरक तक जाकर अम्बावरीष जाति के असुरकुमार उन्हें पूर्व भव के बैर का स्मरण दिलाकर आपस में लड़ाते हैं और उन्हें दुःखी देखकर प्रसन्न होते हैं। इनके इसी प्रकार की कषाय का उदय रहता है।

नारकियों की उत्कृष्ट आयु

तेष्वेक-त्रि-सप्त-दश-सप्तदश-द्वाविंशति-त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमा सत्त्वानां परा स्थितिः ॥६॥

अर्थ- (तेषु) नरकों में (सत्त्वानाम्) नारकी जीवों की (परा स्थितिः) उत्कृष्ट आयु क्रम से (एकसागरोपमा) एक सागर, (त्रिसागरोपमा) तीन सागर, (सप्तसागरोपमा) सात सागर, (दशसागरोपमा) दस सागर, (सप्तदशसागरोपमा) सत्रह सागर, (द्वाविंशतिसागरोपमा) वाईस सागर, और (त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमा) तेतीस सागर है।

प्रश्न - नरकों में नारकी जीव उपपाद स्थान से कहाँ गिरते हैं ?

उत्तर - नरकों में नारकी जीव उपपाद स्थान से छत्तीस प्रकार के शस्त्रों के ऊपर गिरते हैं और गिरते ही गेंद की तरह उछलते हैं और पुनः उसी स्थान पर गिरते हैं।

प्रश्न - नरकों में नारकी जीव कितने ऊपर उछलते हैं ?

उत्तर - प्रथम नरक के नारकी जीव सात उत्सेध योजन और छः हजार, पाँच सौ धनुष उछलते हैं। उससे आगे के नरकों के नारकी जीव दूना-दूना उछलते हैं।

प्रश्न - छिन्न भिन्न होने पर भी नारकियों का शरीर पुनः कैसे मिल जाता है ?

उत्तर - जिस प्रकार तलवार के प्रहार से भिन्न हुआ नदी का जल फिर से मिल जाता है उसी प्रकार अनेकानेक शस्त्रों से छेदा हुआ नारकियों का शरीर भी फिर से मिल जाता है। क्योंकि नारकियों की अकाल मृत्यु नहीं होती।

प्रश्न - नारकी जीवों को सुख शांति का अनुभव कब होता है ?

उत्तर - जब मनुष्य लोक में तीर्थंकरों के जन्म होते हैं तब क्षणमात्र के लिए नारकी जीवों को सुख शांति का अनुभव होता है। तथा तीर्थंकर प्रकृति का बंध करने वाले जीव अगर नरक में जाते हैं तो वहाँ की आयु पूर्ण होने के छः मास पहले से ही वे लड़ना और लड़ाना बंद कर देते हैं।

प्रश्न - नरकों में कोई भी जीव उत्पन्न न हो तो अधिक से अधिक कितने समय तक उत्पन्न नहीं हो सकते ?

उत्तर - पहले नरक में चौबीस मुहूर्त तक, दूसरे नरक में सात दिन तक, तीसरें नरक में एक पक्ष तक, चौथे नरक में एक मास तक, पाँचवें नरक में दो मास तक, छठें नरक में चार मास तक और सातवें नरक में छः मास तक अधिक से अधिक कोई भी जीव उत्पन्न नहीं होते हैं। इसको नरकों का अंतर भी कहते हैं।

प्रश्न - नारकियों के कौन-कौन से ज्ञान होते हैं ?

उत्तर - नारकियों के मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान अथवा कुमति, कुश्रुत और कुअवधि ज्ञान (विभंगावधि ज्ञान) होते हैं।

प्रश्न - नरकों में नारकी जीव अवधिज्ञान के माध्यम से कहाँ तक की बात जान सकते हैं ?

उत्तर - प्रथम नरक के नारकी जीव अवधिज्ञान के माध्यम से चार कोस तक की बात जानते हैं। दूसरे नरक के नारकी जीव साढ़े तीन कोस तक की बात जानते हैं। तीसरे नरक के नारकी जीव तीन कोस तक की बात जानते हैं। चौथे नरक के नारकी जीव ढाई कोस तक की बात जानते हैं। पाँचवें नरक के नारकी जीव दो कोस तक की बात जानते हैं। छठें नरक के नारकी जीव डेढ़ कोस तक की बात जानते हैं और सातवें नरके के नारकी जीव एक कोस तक की बात जानते हैं। अर्थात् जान सकते हैं।

प्रश्न - नरकों में नारकियों की उत्कृष्ट आयु कितनी होती है ?

उत्तर - पहले नरक के नारकियों की उत्कृष्ट आयु एक सागर की होती है। दूसरे की तीन सागर की, तीसरे की सात सागर की, चौथे की दस सागर की, पाँचवें की सत्रह सागर की, छठें की बाईस सागर की एवं सातवें नरक के नारकी जीवों की उत्कृष्ट आयु तैंतीस सागर की होती है।

प्रश्न - नरकों के नारकी जीवों की जघन्य आयु कितनी होती है ?

उत्तर - पहले नरक के नारकी जीवों की जघन्य आयु दस हजार वर्ष की होती है। दूसरे की एक सागर की, तीसरे की तीन सागर की, चौथे की सात सागर की, पाँचवें की दस सागर की, छठें की सत्रह सागर की और सातवें नरक के नारकी जीवों की जघन्य आयु बाईस सागर की होती है।

प्रश्न - प्रथम नरक के नारकी जीव मरकर दूसरी पर्याय को प्राप्तकर लगातार कितनी बार उसी नरक में उत्पन्न हो सकते हैं ?

उत्तर - प्रथम नरक के नारकी जीव मरकर अन्य पर्याय को प्राप्तकर लगातार आठ बार उसी नरक में उत्पन्न हो सकते हैं।

प्रश्न - दूसरे नरक के नारकी जीव मरकर अन्य पर्याय प्राप्तकर लगातार कितनी बार उसी नरक में उत्पन्न हो सकते हैं ?

उत्तर - दूसरे नरक के नारकी जीव मरकर अन्य पर्याय प्राप्तकर लगातार सात बार उसी नरक में उत्पन्न हो सकते हैं।

प्रश्न - तीसरे नरक के नारकी जीव मरकर अन्य पर्याय प्राप्तकर लगातार कितनी बार उसी नरक में उत्पन्न हो सकते हैं ?

उत्तर - तीसरे नरक के नारकी जीव मरकर अन्य पर्याय प्राप्तकर लगातार छः बार उसी नरक में उत्पन्न हो सकते हैं।

प्रश्न - चौथे नरक के नारकी जीव मरकर अन्य पर्याय प्राप्तकर लगातार कितनी बार उसी नरक में उत्पन्न हो सकते हैं ?

उत्तर - चौथे नरक के नारकी जीव मरकर अन्य पर्याय प्राप्तकर लगातार पाँच बार उसी नगर में उत्पन्न हो सकते हैं।

प्रश्न - पाँचवें नरक के नारकी जीव मरकर अन्य पर्याय प्राप्तकर लगातार कितनी बार उत्पन्न हो सकते हैं ?

उत्तर - पाँचवें नरक के नारकी जीव मरकर अन्य पर्याय प्राप्तकर लगातार चार बार उसी नरक में उत्पन्न हो सकते हैं।

प्रश्न - छठें नरक के नारकी जीव मरकर अन्य पर्याय प्राप्तकर लगातार कितनी बार उसी नरक में उत्पन्न हो सकते हैं ?

उत्तर - छठें नरक के नारकी जीव मरकर अन्य पर्याय प्राप्तकर लगातार तीन बार उसी नरक में उत्पन्न हो सकते हैं।

प्रश्न - सातवें नरक के नारकी जीव मरकर अन्य पर्याय प्राप्तकर लगातार कितनी बार उसी नरक में उत्पन्न हो सकते हैं ?

उत्तर - सातवें नरक के नारकी जीव मरकर अन्य पर्याय प्राप्तकर लगातार दो बार उसी नरक में उत्पन्न हो सकते हैं।

प्रश्न - नारकी जीवों के कौन-कौन से गुणस्थान होते हैं ?

उत्तर - नारकी जीवों के मिथ्यादृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि, सम्यग् मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थान होते हैं। अर्थात् नारकी जीव इन चार गुणस्थानवर्ती होते हैं।

प्रश्न - असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानवर्ती नारकी जीवों के कौन-कौन सम्यक्त्व हो सकते हैं ?

उत्तर - असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानवर्ती नारकी जीवों के क्षायिक सम्यक्त्व, वेदकसम्यक्त्व, और उपशमसम्यक्त्व हो सकते हैं।

प्रश्न - क्या सासादन गुणस्थानवर्ती जीव मरकर नरक में उत्पन्न हो सकते हैं ?

उत्तर - सासादन गुणस्थानवर्ती जीव मरकर नरक में उत्पन्न नहीं होते हैं।

प्रश्न - सासादन गुणस्थानवर्ती जीव नरक में क्यों नहीं जाते हैं ?

उत्तर - सासादन गुणस्थानवर्ती जीव के नरकायु का बन्ध ही नहीं होता है अत: वे नरक में नहीं जाते हैं।

प्रश्न - क्या असंयतसम्यग्दृष्टि जीव मरकर नरक में उत्पन्न हो सकते हैं ?

उत्तर - असंयतसम्यग्दृष्टि जीव मरकर प्रथम पृथ्वी (नरक) में उत्पन्न हो सकते हैं।

प्रश्न - असंयतसम्यग्दृष्टि जीव नरक में किस कारण से उत्पन्न होते हैं ?

उत्तर - किसी जीव ने मिथ्यात्व (मिथ्यादर्शन) की अवस्था में नरक आयु का बंध कर लिया हो और तत्पश्चात् सम्यक्त्व को प्राप्त किया हो तो ऐसे जीव प्रथम नरक तक उत्पन्न होते हैं। यथा - राजा श्रेणिक के जीव ने सातवें नरक की आयु का बन्ध कर लिया और बाद में सम्यक्त्व को प्राप्त किया तो प्रथम नरक में उत्पन्न होना पड़ा।

प्रश्न - नारकी जीवों के देशविरत आदिक ऊपर के गुणस्थान क्यों नहीं होते हैं ?

उत्तर - नारकी जीव अप्रत्याख्यानावरण कषाय के उदय से सहित, हिंसा में आनंद मानने वाले और नाना प्रकार के प्रचुर दु:खों से संयुक्त रहते हैं अत: नारकी जीवों के देशविरत आदिक उपरितन दस गुणस्थानों के हेतुभूत जो विशुद्ध परिणाम हैं वे कदाचित् भी नहीं होते हैं। इसलिए नारकी जीवों के देशविरत आदिक गुणस्थान नहीं होते हैं।

प्रश्न - वज्रवृषभनाराच संहनन वाले जीव कौन से नरक तक उत्पन्न हो सकते हैं ?

उत्तर - वज्रवृषभनाराच संहनन वाले जीव सातों नरकों में उत्पन्न हो सकते हैं।

प्रश्न - वज्रनाराच संहनन, नाराच संहनन और अर्धनाराच संहनन वाले जीव कौन से नरक तक उत्पन्न हो सकते हैं ?

उत्तर - वज्रनाराच संहनन, नाराच संहनन और अर्धनाराच संहनन वाले जीव सातवें नरक को छोड़कर शेष प्रारम्भ के छ: नरकों में उत्पन्न हो सकते हैं।

प्रश्न - कीलित, संहनन वाले जीव कौन से नरक तक उत्पन्न हो सकते हैं ?

उत्तर - कीलित संहनन वाले जीव सातवें और छठें नरक को छोड़कर शेष प्रारम्भ के पाँच नरकों में उत्पन्न हो सकते हैं।

प्रश्न - सृपाटिका संहनन वाले जीव कौन से नरक तक उत्पन्न हो सकते हैं ?

उत्तर - सृपाटिका संहनन वाले जीव प्रथम, द्वितीय और तृतीय नरक तक उत्पन्न हो सकते हैं।

प्रश्न - वर्तमान काल में जीव मरकर कौन से नरक तक जा सकते हैं ?

उत्तर - वर्तमान काल में जीव मरकर पाँच नरक तक उत्पन्न हो सकते हैं परन्तु बाहुल्यता से तीसरे नरक तक जा सकते हैं।

प्रश्न - मनुष्य और मत्स्य मरकर किस नरक तक जा सकते हैं ?

उत्तर - मनुष्य और मत्स्य मरकर प्रथम नरक से लेकर सातवें नरक तक के किसी भी नरक में जा सकते हैं।

प्रश्न - स्त्रियाँ (महिलायें) मरकर किस नरक तक जा सकती हैं ?

उत्तर - स्त्रियाँ (महिलायें) मरकर प्रथम नरक से लेकर छठें नरक तक के किसी भी नरक में जा सकती हैं।

प्रश्न - प्रथम नरक से लेकर पाँचवें नरक तक कौन-कौन जीव मरकर जा सकते हैं ?

उत्तर - प्रथम नरक से पाँचवें नरक तक किसी भी नरक में सिंह, प्रथम से चौथे नरक तक किसी भी नरक में भुजंग (सर्प), प्रथम से तीसरे नरक तक किसी भी नरक में पक्षी,प्रथम व द्वितीय नरक तक सरीसृप तथा असंज्ञी पंचेन्द्रिय जीव मरकर प्रथम नरक तक जा सकते हैं।

प्रश्न - मरकर उसी पर्याय में कौन जीव उत्पन्न नहीं होते हैं ?

उत्तर - देव, नारकी, भोगभूमिज तिर्यञ्च, और भोगभूमिज मनुष्य, ये मरकर उसी पर्याय में उत्पन्न नहीं होते हैं।

प्रश्न - किन जीवों के दाढ़ी मूँछ के बाल नहीं होते हैं ?

उत्तर - सभी प्रकार के देव, नारकी, हलधर (बलभद्र), चक्रवर्ती,तीर्थंकर प्रतिनारायण, व कामदेव इन सब के दाढ़ी मूँछ के बाल नहीं होते हैं।

प्रश्न - नारकी जीवों के कौन सा शरीर होता है ?

उत्तर - नारकी जीवों के वैक्रियिक शरीर होता है।

प्रश्न - नरकादि आयु बंधने के बाद छूटती क्यों नहीं है ?

उत्तर - किसी भी आयु का बंध होने के बाद उसे भोगना अत्यन्त आवश्यक है। परंतु

विशुद्ध परिणामों के माध्यम से घट सकती है तथा संक्लेश परिणामों के माध्यम से बढ़ भी सकती है।

प्रश्न - नरक आयु की प्राप्ति किन कारणों से होती है ?

उत्तर - अत्यन्त संक्लेश परिणामों के होने से, बहुत आरम्भ से, बहुत परिग्रह के होने से, तीव्र कषाय रूप परिणामों से एवं कृष्णादि अशुभ लेश्याओं के माध्यम से नरकगति (आयु) की प्राप्ति होती है।

प्रश्न - अधोलोक में कितने अकृत्रिम चैत्यालय होते हैं ?

उत्तर - अधोलोक में सात करोड़ बहत्तर लाख अकृत्रिम चैत्यालय होते हैं।

मध्यलोक का वर्णन

कुल द्वीप समुद्रों के नाम

जम्बूद्वीप-लवणोदादय: शुभनामानो द्वीप-समुद्रा: ॥७॥

अर्थ- इस मध्यलोक में (शुभनामान:) अच्छे अच्छे नाम वाले (जम्बूद्वीप-लवणोदादय: द्वीपसमुद्रा:) जम्बूद्वीप आदि द्वीप और लवणसमुद्र आदि समुद्र (सन्ति) हैं।

भावार्थ - सबके बीच में थाली के आकार का जम्बूद्वीप है, उसके चारों तरफ लवण समुद्र है, उसके चारों तरफ धातकीखण्ड द्वीप है, उसके चारों तरफ कालोदधि समुद्र है, उसके चारों तरफ पुष्करवर द्वीप है, उसके चारों तरफ पुष्करवर समुद्र है। इस प्रकार एक दूसरे को घेरे हुये असंख्यात द्वीप समुद्र हैं। अन्त के द्वीप का नाम स्वयम्भूरमणद्वीप और समुद्र का नाम स्वयंभूरमणसमुद्र है।

मेरु पर्वत : स्वयम्भूरमण द्वीप और स्वयम्भूरमण समुद्र के/विदेह क्षेत्र के ठीक बीच में मेरु पर्वत है जो एक लाख योजन का है। इसमें से एक हजार योजन जमीन में है। इसके अलावा चालीस योजन की चोटी ओर है। इससे मेरु पर्वत की कुल ऊँचाई एक लाख चालीस योजन हो जाती है। जमीन पर प्रारम्भ में मेरु पर्वत का विस्तार दस हजार योजन है, ऊपर क्रम से घटता गया है। जिस हिसाब से ऊपर घटा है उसी हिसाब से जमीन के भीतर विस्तार बढ़ता गया है।

मानुषोत्तर पर्वत भीतर की ओर सत्रह सौ इक्कीस योजन ऊँचा है। जमीन पर इसकी चौड़ाई एक हजार बाईस योजन है, मध्य में सात सौ तेईस योजन हैं और ऊपर चार सौ चौबीस योजन हैं। इससे इसका आकार बैठे हुए सिंह के समान हो जाता है। बैठा हुआ सिंह आगे को ऊँचा होता है और पीछे को क्रम से घटता हुआ यह पर्वत भी भीतर की ओर एक समान ऊँचा है और बाहर की ओर यह क्रम से घटता गया है,

जिससे इसका रिपटासा बन गया है।

मेरु पर्वत के तीन काण्ड हैं। पहला काण्ड जमीन से पाँच सौ योजन का दूसरा साढ़े बासठ हजार योजन का और तीसरा छत्तीस हजार योजन का है। प्रत्येक काण्ड के अन्त में एक-एक कटनी है, जिसका विस्तार पाँच सौ योजन है। केवल अन्तिम कटनी का विस्तार छह योजन कम है। एक जमीन पर और तीन मेरु पर्वत पर। इस प्रकार यह चार वनों से घिरा हुआ है। इस वनों के क्रम से भद्रसाल, नन्दन, सौमनस और पाण्डुक ये नाम हैं। पहली और दूसरी कटनी के बाद ग्यारह हजार योजन तक मेरु पर्वत सीधा गया है, फिर क्रमशः घटने लगता है। मेरु पर्वत के चारों वनों में सोलह अकृत्रिम चैत्यालय हैं और पाण्डुक वन की चारों दिशाओं में चार पाण्डुक शिलाएँ हैं। जिन पर उस उस दिशा के क्षेत्रों में उत्पन्न हुए तीर्थंकरों का अभिषेक होता है। इसका रंग पीला है।

द्वीप और समुद्रों का विस्तार और आकार

द्वि-र्द्वि-र्विष्कम्भाः पूर्व-पूर्व-परिक्षेपिणो वलयाकृतयः ॥८॥

अर्थ- प्रत्येक द्वीप समुद्र (द्विः द्विः) दूने-दूने (विष्कम्भाः) विस्तार वाले (पूर्व-पूर्व) पहिले पहिले के द्वीप समुद्र को (परिक्षेपिणः) घेरे तथा (वलयाकृतयः) चूड़ी के समान आकार वाले (सन्ति) हैं।

द्वीप से समुद्र का और समुद्र से द्वीप का विस्तार दुगुना है तथा द्वीप से द्वीप का और समुद्र से समुद्र का विस्तार चौगुना है। इस प्रकार तीसरे द्वीप का विस्तार १६ लाख योजन और तीसरे समुद्र का विस्तार ३२ लाख योजन है।

जम्बूद्वीप का विस्तार और आकार

तन्मध्ये मेरु-नाभि-र्वृत्तो योजन-शत-सहस्र-विष्कम्भो जम्बूद्वीपः ॥९॥

अर्थ- (तन्मध्ये) उन सब द्वीप समुद्रों के बीच में (मेरुनाभिः) सुदर्शन मेरु है नाभि जिसकी ऐसा तथा (वृत्तः) थाली के समान गोल (योजनशतसहस्रवि कम्भः) एक लाख योजन विस्तार वाला (जम्बूद्वीपः) जम्बूद्वीप (अस्ति) है।

प्रश्न - जम्बूद्वीप में क्षेत्र पर्वत आदि कितने हैं ?

उत्तर - जम्बूद्वीप में सुदर्शन नाम का एक मेरु पर्वत है, छः कुलाचल पर्वत हैं, चार यमक गिरी, दो सौ कांचन गिरि, आठ दिग्गज पर्वत, सोलह वक्षार गिरि, चार गजदन्त, चौतीस विजयार्ध पर्वत, चौतीस वृषभाचल, चार नाभिगिरि इस प्रकार कुल मिलाकर तीन सौ ग्यारह पर्वत होते हैं।

क्षेत्रों के नाम

भरत-हैमवत-हरि-विदेह-रम्यक-हैरण्यवतैरावत-वर्षाः क्षेत्राणि ॥१०॥

अर्थ- जम्बूद्वीप में भरत, हैमवत, हरि, विदेह, रम्यक, हैरण्यवत और ऐरावत ये सात क्षेत्र हैं।

प्रश्न - जम्बूद्वीप के इन सात क्षेत्रों में कौन-सी भूमि होती है ?

उत्तर - जम्बूद्वीप के इन क्षेत्रों में भोगभूमि और कर्मभूमि दोनों होती हैं। भरत और ऐरावत क्षेत्र में भोगभूमि और कर्मभूमि दोनों होती हैं। विदह क्षेत्र में भोगभूमि और कर्मभूमि दोनों होती हैं। शेष क्षेत्रों में भोगभूमि ही होती है।

प्रश्न - भोगभूमि किसे कहते हैं ?

उत्तर - जहाँ के मनुष्य और तिर्यञ्च दस प्रकार के कल्पवृक्षों से मनवांछित भोग भोगते हैं और जहाँ किसी भी प्रकार की कोई परेशानी नहीं होती है, उसे भोगभूमि कहते हैं।

प्रश्न - भोगभूमि में कौन से दस कल्पवृक्ष होते हैं ?

उत्तर- भोगभूमि में निम्नलिखित कल्पवृक्ष होते हैं - (१) मद्यांग, (२) वादित्र, (३) भूषणांग, (४) मालांग, (५) दीपांग, (६) ज्योतिरांग, (७) गृहरांग, (८) भोजनांग, (९) भाजनांग, और (१०) वस्त्रांग।

प्रश्न - भोगभूमियाँ कितने प्रकार की होती हैं ?

उत्तर - भोगभूमियाँ दो प्रकार की होती हैं। शाश्वत भोगभूमि और अशाश्वत भोगभूमि।

प्रश्न - शाश्वत भोगभूमि कहाँ पर होती है ?

उत्तर - हेमवतक्षेत्र में, हरिक्षेत्र में, रम्यकक्षेत्र में, हैरण्यवतक्षेत्र में, देवकुरु और उत्तरकुरु में शाश्वत भोगभूमियाँ होती हैं।

प्रश्न - अशाश्वत भोगभूमि कहाँ होती हैं ?

उत्तर - भरत क्षेत्र में, और ऐरावत क्षेत्र में अशाश्वत भोगभूमियाँ होती हैं।

प्रश्न - भरत और ऐरावत क्षेत्रों में भोगभूमि की रचना कब होती है ?

उत्तर - भरत और ऐरावत क्षेत्रों में अवसर्पिणी काल के पहले, दूसरे तथा तीसरे काल में भोगभूमि की रचना होती है और उत्सर्पिणी काल के चौथे, पाँचवें और छठें काल में भोगभूमि की रचना होती है, क्योंकि अवसर्पिणी काल से उत्सर्पिणी काल उल्टा चलता है।

प्रश्न - भोगभूमि का काल कितना होता है ?

उत्तर - अठारह कोड़ाकोड़ी सागर तक भोगभूमि की रचना होती है।

प्रश्न - भोगभूमि में कौन जीव जन्म लेते हैं ?

उत्तर - पाँच पापों के त्यागने वाले, मन्द कषाय वाले, ब्रह्मचारी, मुनि को आहार दान देने वाले, व्रतों को धारण करने वाले, मुनिभक्त और निर्मल परिणाम वाले जीव भोगभूमि में जन्म लेते है।

प्रश्न - भोगभूमि के जीवों का मरण कब होता है ?

उत्तर - भोगभूमि में जब बच्चों (जुड़वाँ) का जन्म होता है तब उसी समय पति पत्नी दोनों की मृत्यु हो जाती है। पुरुष को केवल छींक आती है और स्त्री को केवल जंभाई आती है और कोई कष्ट नहीं होता है। शरद ऋतु के बादलों के समान उनके शरीर उसी समय छिन्न-भिन्न हो जाते हैं।

प्रश्न - अशाश्वत भोगभूमियाँ कितने प्रकार की होती हैं ?

उत्तर - अशाश्वत भोगभूमियाँ उत्तम, मध्यम और जघन्य के भेद से तीन प्रकार की होती हैं। प्रथम काल में उत्तम भोगभूमि, द्वितीय काल में मध्यम भोगभूमि और तृतीय काल में जघन्य भोगभूमि होती है।

प्रश्न - जघन्य भोगभूमि के जीव किस क्रम से बढ़ते हैं ?

उत्तर - जन्म के पश्चात् बच्चा शय्या पर सोते-सोते सात दिन तक अंगूठा चूसता है, फिर दूसरे सप्ताह तक घुटने के बल पर चलता है, तीसरे सप्ताह में मीठी-मीठी तोतली भाषा बोलता है, चौथे सप्ताह में पैरों को जमाकर चलने लगता है, पाँचवें सप्ताह में कला और रूप आदि गुणों वाला हो जाता है, छठें सप्ताह में युवावस्था को प्राप्त हो जाता है और सातवें सप्ताह में सम्यग्दर्शन के धारण करने के योग्य हो जाता है।

प्रश्न - मध्यम भोगभूमि के जीव किस क्रम से बढ़ते हैं ?

उत्तर - जन्म के पश्चात् बच्चा शय्या पर सोते-सोते पाँच दिन तक अंगूठा चूसता है, फिर पाँच दिन तक घुटने के बल पर चलता है, फिर पाँच दिन में मीठी-मीठी तोतली भाषा बोलता है, फिर पाँच दिन में पैरों को जमाकर चलने लगता है, फिर पाँच दिन में कला और रूप आदि गुणों वाला हो जाता है, फिर पाँच दिन में युवावस्था को प्राप्त हो जाता है और फिर पाँच दिन में सम्यग्दर्शन के धारण करने के योग्य हो जाता है।

प्रश्न - उत्तम भोगभूमि के जीव किस क्रम से बढ़ते हैं ?

उत्तर - जन्म के पश्चात् बच्चा शय्या पर सोते-सोते तीन दिन तक अंगूठा चूसता है, फिर तीन दिन तक घुटने के बल पर चलता है, फिर तीन दिन में मीठी-मीठी तोतली भाषा बोलता है, फिर तीन दिन में पैरों को जमाकर चलने लगता है, फिर तीन दिन में कला और रूप आदि गुणों वाला हो जाता है, फिर तीन दिन में युवावस्था को प्राप्त हो जाता है और फिर तीन दिन में सम्यग्दर्शन के धारण करने के योग्य हो जाता है।

प्रश्न - भोगभूमि के मनुष्यों का बल किसके समान होता है ?

उत्तर - भोगभूमि के मनुष्यों का बल नौ हजार हाथियों के बराबर होता है।

प्रश्न - भोगभूमि की क्या विशेषता है ?

उत्तर - भोगभूमि में विकलत्रय जीव नहीं होते, सर्प, बिच्छू आदि विषैले जन्तु नहीं होते, वहाँ ऋतुओं का परिवर्तन नहीं होता, भोगभूमि के मनुष्यों को न तो बुढ़ापा आता है, न कोई रोग होता है, न निद्रा, न चिन्ता ही होती है, शरीर में कभी भी कोई रोग नहीं होता इत्यादि विशेषताएँ भोगभूमि में होती है।

प्रश्न - भोगभूमि का सुख किससे अधिक होता है ?

उत्तर - भोगभूमि का सुख चक्रवर्ती के सुख से भी अधिक होता है, वहाँ के मनुष्यों को समचतुरस्रसंस्थान और वज्रवृषभनाराचसंहनन होता है।

प्रश्न - भोगभूमि के जीव मरकर कहाँ उत्पन्न होते हैं ?

उत्तर - भोगभूमि के मिथ्यादृष्टि जीव मरकर भवनत्रिक (भवनवासी, व्यन्तर और ज्योतिष्क) में उत्पन्न होते हैं और सम्यग्दृष्टि जीव पहले और दूसरे स्वर्ग में उत्पन्न होते हैं।

प्रश्न - भोगभूमि के जीवों का आहार कैसा होता है ?

उत्तर - उत्तम भोगभूमि में मनुष्यों का भोजन बदरीफल के बराबर होता है, मध्यम भोगभूमि में बहेड़ा के समान और जघन्य भोगभूमि में आंवले के समान आहार होता है।

प्रश्न - भोगभूमिज जीवों की आयु व शरीर की ऊँचाई कितनी होती है ?

उत्तर - उत्तम भोगभूमिज जीवों की आयु तीन पल्य तथा शरीर की ऊँचाई तीन कोस की होती है। मध्यम भोगभूमिज जीवों की आयु दो पल्य तथा शरीर की ऊँचाई दो कोस की होती है। जघन्य भोगभूमिज जीवों की आयु एक पल्य तथा शरीर की ऊँचाई एक कोस की होती है।

प्रश्न - भोगभूमि के जीवों का आहार कितने समय के बाद होता है ?

उत्तर - उत्तम भोगभूमि के जीवों का चौथे दिन बेर फल के समान थोड़ा सा आहार होता है/लेते हैं। मध्यम भोगभूमि के जीवों का तीसरे दिन बहेड़ा फल के समान आहार होता है और जघन्य भोगभूमि के जीवों का दूसरे दिन आंवले के समान आहार होता है।

प्रश्न - भोगभूमि के जीवों को सम्यक्त्व किन कारणों से उत्पन्न होता है ?

उत्तर - भोगभूमि के जीवों को जातिस्मरण, देव के उपदेश तथा सुखदु:ख अवलोकन एवं जिन-प्रतिमा दर्शन और स्वभाव से भव्य जीवों को सम्यक्त्व उत्पन्न होता है।

क्षेत्रों का विभाग करने वाले छह कुलाचलों के नाम

तद्-विभाजिन: पूर्वापरायता हिमवन्-महाहिमवन्-निषध-नीलरुक्मि-शिखरिणो वर्षधर-पर्वता: ॥११॥

अर्थ- (तद्विभाजिन:) उन सात क्षेत्रों का विभाग करने वाले (पूर्व-अपर-आयता:) पूर्व से पश्चिम तक लम्बे (हिमवन्) हिमवत्, (महाहिमवन्) महाहिमवत् (निषध) निषध, (नील) नील, (रुक्मि शिखरिण:) रुक्मिन् और (शिखरिण:) शिखरिन् ये छह (वर्षधरपर्वता:) वर्षधर (कुलाचल) पर्वत हैं। वर्ष (क्षेत्रों) के विभाग को बनाये रखने के कारण इन्हें वर्षधर कहते हैं।

क्षेत्र और पर्वत : जम्बूद्वीप में मुख्यतया सात क्षेत्र हैं, जो उनके बीच में पड़े हुए छह पर्वतों से विभक्त हैं। ये पर्वत वर्षधर कहलाते हैं। ये सभी पूर्व से पश्चिम तक लम्बे हैं। पहला क्षेत्र भरतवर्ष है जो दक्षिण में है। इससे उत्तर में हैमवतवर्ष है। इन दोनों का विभाग करने वाला पहला हिमवान् पर्वत है। तीसरा क्षेत्र हरिवर्ष है जो हैमवतवर्ष के उत्तर में है। इन दोनों का विभाग करने वाला महाहिमवान् पर्वत है। चौथा क्षेत्र विदेहवर्ष है जो हरिवर्ष के उत्तर में है। इन दोनों का विभाग करने वाला निषधपर्वत है। पाँचवाँ क्षेत्र रम्यकवर्ष है जो विदेहवर्ष के उत्तर में है। इन दोनों का विभाग करने वाला नीलपर्वत है। छठा क्षेत्र हैरण्यवतवर्ष है जो रम्यकवर्ष के उत्तर में है। इन दोनों का विभाग करने वाला रुक्मीपर्वत है। तथा सातवाँ क्षेत्र ऐरावतवर्ष है जो हैरण्यवतवर्ष के उत्तर में है। इन दोनों क्षेत्रों को विभक्त करने वाला शिखरी पर्वत है।

कुलाचलों के वर्ण (रंग)

हेमार्जुन-तपनीय-वैडूर्य-रजत-हेममया: ॥१२॥

अर्थ- ये पर्वत क्रम से (हेम) सुवर्ण, (अर्जुन) चांदी, (तपनीय) तपाये हुये सुवर्ण, (वैडूर्य) वैडूर्य (नील) मणि, (रजत) चांदी और (हेममया:) सुवर्ण के समान वर्ण वाले (सन्ति) हैं। किन्तु ये सुवर्ण आदिक के नहीं हैं।

प्रश्न - कुलाचल पर्वतों के रंग किसके समान होते हैं ?

उत्तर - हिमवन् कुलाचल स्वर्ण के समान, महाहिमवन् कुलाचल चाँदी के समान, निषध कुलाचल तपाये स्वर्ण के समान, नील कुलाचल वैडूर्यमणी के समान, रुक्मि कुलाचल चाँदी के समान और शिखरी कुलाचल स्वर्ण के समान रंग (वर्ण) होते हैं।

पर्वतों की विशेषता

मणि-विचित्र-पार्श्वा उपरिमूले च तुल्य-विस्तारा: ॥१३॥

अर्थ- ये पर्वत (मणिविचित्रपार्श्वा:) दोनों पार्श्वों (बाजुओं) में तरह-तरह की मणियों से खचित (उपरि मूले च) ऊपर, नीचे और मध्य में (तुल्यविस्तारा:) एक समान (बराबर) विस्तार वाले (सन्ति) हैं।

पर्वतों पर स्थित तालाबों के नाम

पद्म-महापद्म-तिगिंछ-केशरि-महापुण्डरीक-पुण्डरीका ह्रदास्तेषा-मुपरि॥१४॥

अर्थ- (तेषाम् उपरि) उन पर्वतों के ऊपर क्रम से (पद्म) पद्म, (महापद्म) महापद्म, (तिगिंछ) तिगिंछ, (केशरि) केशरिन्, (महापुण्डरीक) महापुण्डरीक और (पुण्डरीका:)पुण्डरीक ये छह (ह्रदा:) तालाब (सन्ति) हैं।

विशेषार्थ- हिमवत् पर्वत के ऊपर पद्म नामक तालाब है। महाहिमवत् पर्वत के ऊपर महापद्म नामक तालाब है। निषध पर्वत के ऊपर तिगिंछ नामक तालाब है। नील पर्वत के ऊपर केशरिन् नामक तालाब है। रुक्मि पर्वत के ऊपर महापुण्डरीक नामक तालाब है। शिखरी पर्वत के ऊपर पुण्डरीक नामक तालाब है।

प्रथम तालाब की लम्बाई चौड़ाई

प्रथमो योजन-सहस्रायामस् तदर्ध विष्कम्भो ह्रद: ॥१५॥

अर्थ- (प्रथम: ह्रद:) पहला पद्म तालाब (योजनसहस्रायाम:) एक हजार महायोजन लम्बा और (तदर्धविष्कम्भ:) लम्बाई से आधा (पांच सौ महायोजन) चौड़ा (विद्यते) है।

प्रश्न - पद्म सरोवर की लम्बाई चौड़ाई कितनी होती है ?

उत्तर - पद्म सरोवर एक हजार योजन लम्बा पाँच सौ योजन चौड़ा और दस योजन गहरा है तथा उसमें एक योजन का कमल होता है।

विशेषार्थ- दो हजार कोस का एक महायोजन होता है।

प्रथम तालाब की गहराई

दश-योजनावगहा: ॥१६॥

अर्थ- पहला तालाब दश महायोजन गहरा है।

प्रथम तालाब की विशेषता

तन्मध्ये योजनं पुष्करम् ॥१७॥

अर्थ- (तन्मध्ये) पद्म सरोवर के बीच (योजनम्) एक योजन लम्बा और चौड़ा (पुष्करम्) एक कमल (अस्ति) है।

विशेष - यह कमल वनस्पतिकाय का नहीं है, किन्तु कमल के आकार की पृथ्वी है। अर्थात् यह कमल पृथ्वीकाय का है।

यह कमल पृथिवीमय है। इसके अलावा परिवार कमल एक लाख चालीस हजार और एक सौ पचास है, जिनका उत्सेध आदि मुख्य कमल से आधा है। एक तालाब पर एक लाख चालीस हजार और एक सौ पचास के लगभग कमल हैं। उनमें देव रहते हैं।

द्वितीयादि तालाबों और कमलों का विस्तार

तद्-द्विगुण-द्विगुणा ह्रदाः पुष्कराणि च ॥१८॥

अर्थ- (ह्रदा: पुष्कराणि च) आगे के तालाब और कमल क्रम से (तद्द्विगुणद्विगुणा:) प्रथम तालाब से तथा उसके कमलों से दूने दूने विस्तार वाले (सन्ति) हैं।

नोट- दूने दूने का क्रम तिगिञ्छ नामक तीसरे तालाब तक ही है। उसके आगे तीन तालाब और तीन कमल दक्षिण के तालाबों और कमलों के समान विस्तार वाले हैं।

कमलों पर निवास करने वाली देवियाँ

तन्-निवासिन्यो देव्यः श्री-ह्री-धृति-कीर्ति-बुद्धि-लक्ष्म्यः पल्योपमस्थितयः ससामानिक-परिषत्काः ॥१९॥

अर्थ- (पल्योपमस्थितय:) एक पल्य की आयु वाली तथा (ससामानिक-परिषत्का:) सामानिक और परिषत्क जाति के देवों से सहित (श्रीह्रीधृतिकीर्ति-बुद्धि लक्ष्म्य:) श्री, ह्री, धृति, कीर्ति, बुद्धि और लक्ष्मी नामक (देव्य:) देवियाँ, क्रम से (तन्निवासिन्य:) उन सरोवरों के कमलों पर निवास करती हैं।

प्रश्न - कमल की कर्णिकाओं में स्थित महलों में किनका निवास रहता है ?

उत्तर - कमल की कर्णिकाओं में स्थित महलों में श्री, ह्री, धृति, कीर्ति, बुद्धि और

लक्ष्मी ये छ: प्रकार की देवियाँ ससामानिक और पारिषद् जाति के देवों के साथ रहती हैं। उनकी एक पल्य की आयु होती है।

ये छहों व्यन्तर देव की देवियाँ होती हैं। तीन देवियाँ सौधर्म-इन्द्र की आज्ञा में तथा तीन देवियाँ ऐशान-इन्द्र की आज्ञा में रहती हैं।

चौदह महानदियों के नाम

गङ्गासिन्धु-रोहिद्रोहितास्या-हरिद्धरिकान्ता-सीता-सीतोदा-नारीनर-कान्ता-सुवर्ण-रूप्यकूला-रक्तारक्तोदा: सरितस्तन्मध्यगा: ॥२०॥

अर्थ- गङ्गा, सिन्धु, रोहित्, रोहितास्या, हरित्, हरिकान्ता, सीता, सीतोदा, नारी, नरकान्ता, सुवर्णकूला, रूप्यकूला, रक्ता और रक्तोदा ये चौदह नदियाँ जम्बूद्वीप के पूर्वोक्त ७ क्षेत्रों के बीच बहती हैं।

गंगा आदि नदियों का विशेष वर्णन : उक्त सात क्षेत्रों में चौदह नदियाँ बही हैं। जिनमें से भरतवर्ष में गंगा और सिन्धु, हैमवतवर्ष में रोहित् और रोहितास्या, हरिवर्ष में हरित् और हरिकान्ता, विदेहवर्ष में सीता और सीतोदा, रम्यकवर्ष में नारी और नरकान्ता, हैरण्यवतवर्ष में सुवर्णकूला और रूपयकूला तथा ऐरावतवर्ष में रक्ता और रक्तोदा-ये चौदह नदियाँ बहीं हैं।

प्रश्न- किस तालाब से कौन सी नदियाँ निकली हैं।

उत्तर - पद्म सरोवर से गंगा, सिन्धु और रोहितास्या ये तीन नदियाँ निकलती हैं। पुण्डरीक सरोवर से सुवर्णकूला, रक्ता और रक्तोदा ये तीन नदियाँ निकलती हैं। महापद्म सरोवर से - रोहित और हरिकान्ता, तिगिंछ सरोवर से - हरित् और सीतोदा, केसरी सरोवर से - सीता और नरकान्ता तथा महापुण्डरीक सरोवर से - नारी और रुप्यकूला ये नदियाँ निकलती हैं।

महापद्म तालाब से रोहित् और हरिकान्ता, तिगिञ्छ तालाब से हरित और सीतोदा, केसरी तालाब से सीता और नरकान्ता, महापुण्डरीक तालाब से नारी और रूप्यकूला।

तालाब व्यवस्था

क्र.	नाम	लम्बाई	चौडाई	गहराई	देवी
१	पद्म	१००० म. यो.	५०० यो.	१०म. यो.	श्री
२	महापद्म	२००० म. यो.	१००० यो.	२०म. यो.	ही
३	तिगिंछ	४००० म. यो.	२००० यो.	४०म. यो.	धृति
४	केशरी	४००० म. यो.	२००० यो.	४०म. यो.	कीर्ति

५	महापुण्डरीक	२००० म. यो.	१००० यो.	२०म. यो.	बुद्धि
६	पुण्डरीक	१००० म. यो.	५०० यो.	१०म. यो.	लक्ष्मी

पूर्व की ओर बहने वाली नदियाँ

द्वयो र्द्वयोः पूर्वाः पूर्वगाः ॥२१॥

अर्थ- (द्वयोः द्वयोः) गंगा सिन्धु इत्यादि दो दो नदियों में से (पूर्वाः) पहली-पहली नदी (पूर्वगा) पूर्व समुद्र को जाती है। अर्थात् गङ्गा, रोहित, हरित्, सीता, नारी, सुवर्णकूला और रक्ता ये सात नदियाँ पूर्व-समुद्र में जाकर मिलती हैं।

प्रश्न - पूर्वी समुद्रों में जाकर कौन-कौन सी महानदियाँ मिलती हैं ?

उत्तर - (१) गंगा, (२) रोहित, (३) हरित्, (४) सीता, (५) नारी, (६) सुवर्णकूला और (७) रक्ता ये सात महानियाँ पूर्वी समुद्र में जाकर मिलती हैं।

पश्चिम की ओर बहने वाली नदियाँ

शेषास्त्वपरगाः ॥२२॥

अर्थ- (शेषाः) प्रत्येक जोड़े की दूसरी-दूसरी नदियाँ (अपरगाः) पश्चिम की ओर जाती हैं। अर्थात् सिन्धु, रोहितास्या, हरिकान्ता, सीतोदा, नरकान्ता, रूप्यकूला और रक्तोदा ये सात नदियाँ पश्चिम समुद्र में जाकर मिलती हैं।

प्रश्न - पश्चिम समुद्र में जाकर कौन-कौन सी महानदियाँ मिलती हैं ?

उत्तर - (१) सिन्धु (२) रोहितास्या (३) हरिकान्ता (४) सीतोदा (५) नरकान्ता (६) रुप्यकूला और (७) रक्तोदा ये सात नदियाँ पश्चिमी समुद्र में जाकर मिलती हैं।

महानदियों की सहायक नदियाँ

चतुर्दश-नदी-सहस्र-परिवृता गङ्गा-सिन्ध्वादयो नद्यः ॥२३॥

अर्थ- (गङ्गासिन्ध्वादयो नद्यः) गंगा और सिन्धु आदि नदियों के युगल (चतुर्दशनदीसहस्रपरिवृताः) चौदह-चौदह हजार सहायक नदियों से घिरे हुये हैं।

विशेषार्थ- गंगा नदी से १४,००० सिन्धु नदी से १४,००० रोहित नदी से २८,०००, रोहितास्या नदी से २८,०००, हरित् नदी से ५६,०००, हरिकान्ता नदी से ५६,०००, सीता नदी से १,१२,०००, सीतोदा नदी से १,१२,०००, नारी नदी से ५६,०००, नरकान्ता नदी से ५६,०००, सुवर्णकूला नदी से २८,०००, रूप्यकूला नदी २८,०००, रक्ता नदी से १४,००० और रक्तोदा नदी से १४,००० महानदियाँ निकली हैं।

नोट- सहायक नदियों के क्रम भी विदेह क्षेत्र तक आगे आगे के युगलों में पूर्व के युगलों से दूना दूना है। और उत्तर के तीन क्षेत्रों में दक्षिण के तीन क्षेत्रों के समान हैं।

देवकुरु और उत्तर कुरु में = १६८००० नदियाँ सम्पूर्ण नदियाँ = १४७८००० हैं। जम्बूद्वीप में नदियाँ = १७९२०९० (परिवार नदियाँ = १७९२०००, प्रमुख नदियाँ = ९०) विदेह क्षेत्रस्थ नदियाँ ६४ गंगासिन्धु और रोहित् रोहितास्या की कुल परिवार नदियाँ (१४००० x ६४) = ८९६०००, १२ विभंग की कुल परिवार नदियाँ (२८००० x १२) = ३३६००, देवकुरु उत्तर कुरु गत सीतासीतोदा की परिवार नदियाँ (८४००० x २) = १६८००० + ७८ = १४०००७८ नदियाँ हैं।

भरतक्षेत्र का विस्तार

भरत: षड् विंशति-पञ्चयोजन-शत-विस्तार: षट् चैकोन-विंशति-भागा योजनस्य ।।२४।।

अर्थ- (भरत:) भरतक्षेत्र (षड् विंशतिपञ्चयोजनशतविस्तार:) पांच सौ छब्बीस योजन विस्तार वाला (च) और (योजनस्य) एक योजन के (एकोनविंशतिभागा:) उन्नीस भागों में से (षट्) छह भाग अधिक है।

भावार्थ- भरतक्षेत्र का दक्षिण से उत्तर तक विस्तार ५२६.६/१९ योजन है।

द्वितीयादिक क्षेत्रों और पर्वतों का विस्तार

तद्द्विगुण-द्विगुणा विस्तारा वर्षधर-वर्षा विदेहान्ता: ।।२५।।

अर्थ- (विदेहान्ता:) विदेहक्षेत्र पर्यन्त के (वर्षधरवर्षा:) पर्वत और क्षेत्र (तद्विगुणद्विगुणा:) भरतक्षेत्र से दूने दूने विस्तार वाले (सन्ति) हैं।

विदेहक्षेत्र से आगे के पर्वतों और क्षेत्रों का विस्तार

उत्तरा दक्षिण-तुल्या: ।।२६।।

अर्थ- (उत्तरा:) उत्तर के ऐरावत से लेकर नील तक जितने क्षेत्र और पर्वत आदि हैं उनका विस्तार वगैरह (दक्षिणतुल्या:) दक्षिण के क्षेत्र और पर्वत आदि के समान है।

भरतादि क्षेत्र एवं हिमवान आदि पर्वतों का विस्तार

१	क्षेत्र	= भरत	= ५२६.६/१९	योजन	२८००२ नदियाँ
१	पर्वत	= हिमवान्	= १०५२.१२/१९	योजन	
२	क्षेत्र	= हैमवत	= २१०५.५/१९	योजन	५६००२ नदियाँ
२	पर्वत	= महाहिमवान्	= ४२१०.१०/१९	योजन	
३	क्षेत्र	= हरि	= ८४२१.१/१९	योजन	११२००२ नदियाँ
३	पर्वत	= निषध	= १६८४२.२/१९	योजन	
४	क्षेत्र	= विदेह	= ३३६८४.४/१९	योजन	१४०००७८ नदियाँ

४	पर्वत	= नील	= १६८४२.२/१९	योजन	
५	क्षेत्र	= रम्यक	= ८४२१.१/१९	योजन	११२००२ नदियाँ
५	पर्वत	= रुक्मिन्	= ४२१०.१०/१९	योजन	
६	क्षेत्र	= हैरण्यवत्	= २१०५.५/१९	योजन	५६००२ नदियाँ
६	पर्वत	= शिखरिन्	= १०५२.१२/१९	योजन	
७	क्षेत्र	= ऐरावत	= ५२६.६/१९	योजन	२८००२ नदियाँ

भरत और ऐरावत क्षेत्र में कालचक्र का परिवर्तन

भरतैरावतयो-र्वृद्धिह्रासौ षट्समयाभ्यामुत्सर्पिण्यवसर्पिणीभ्याम्॥२७॥

अर्थ- (षट्समयाभ्याम्) छह कालों से युक्त (उत्सर्पिण्यवसर्पिणीभ्याम्) उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी के द्वारा (भरतैरावतयोः) भरत और ऐरावत क्षेत्र में (वृद्धिह्रासौ) जीवों की आयु, ऊँचाई भोगोपभोग, सम्पदा और सुख आदि की घटती तथा घटती (जायेते) होती रहती है।

विशेषार्थ- बीस कोड़ाकोड़ी सागर का एक कल्पकाल होता है। उसके दो भेद हैं। उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी। प्रत्येक काल के छह-छह भेद होते हैं।

उत्सर्पिणी - जिसमें जीवों की आयु आदि की वृद्धि होती है। अवसर्पिणी- जिसमें जीवों की आयु का ह्रास होता है।

उत्सर्पिणी काल के छह भेद - दुष्षम दुष्षमा, दुष्षमा, दुष्षम सुषमा, सुषम दुष्षमा सुषमा और सुषम सुषमा।

अवसर्पिणी के छह भेद - सुषमसुषमा, सुषमा, सुषमदुःषमा, दुःषमसुषमा, दुःषमा और अतिदुःषमा।

सुषमसुषमा-चार कोड़ाकोड़ी सागर का सुषमा-तीन कोड़ाकोड़ी सागर का, सुषमदुःषमा-दो कोड़ाकोड़ी सागर का, दुःषमसुषमा-व्यालीस हजार वर्ष कम एक कोड़ाकोड़ी सागर वर्ष का, दुःषमा इक्कीस हजार वर्ष का, अतिदुःषमा- इक्कीस हजार वर्ष का होता है।

उत्सर्पिणी के प्रथम, द्वितीय और तृतीय काल में तथा अवसर्पिणी के चतुर्थ, पंचम और षष्ठ काल में कर्मभूमि रहती है। शेष काल में भोगभूमि रहती है।

प्रश्न - चतुर्थ से लेकर छठें काल तक कौन सी भूमि होती है ?

उत्तर - चतुर्थ से लेकर छठें काल तक कर्मभूमि होती है।

प्रश्न - तीर्थंकर आदि महापुरुष कौन से काल में उत्पन्न होते हैं ?

उत्तर - तीर्थंकर आदि महापुरुष चतुर्थ काल में उत्पन्न होते हैं।

प्रश्न - महापुरुष कितने होते है ?

उत्तर - महापुरुष एक सौ उनहत्तर होते हैं।

प्रश्न - एक सौ उनहत्तर महापुरुष कौन-कौन से होते हैं ?

उत्तर - २४ तीर्थंकर, २४ तीर्थंकर के पिता, २४ तीर्थंकर की माता, २४ कामदेव, १२ चक्रवती, ११ रुद्र, ९ नारायण, ९ प्रतिनारायण, ९ नारद, ९ बलभद्र और १४ कुलकर ये एक सौ उनहत्तर महापुरुष होते हैं। कुलकरों का जन्म तीसरे काल के अन्त में होता है।

प्रश्न - त्रेशठशला के पुरुष कौन-कौन से होते हैं ?

उत्तर - २४ तीर्थंकर, १२ चक्रवर्ती, ९ नारायण, ९ प्रतिनारायण और ९ बलभद्र ये त्रेशठशला के पुरुष कहलाते हैं।

प्रश्न - पंचम काल के मनुष्य किस प्रकार के होते हैं ?

उत्तर - पंचम काल के मनुष्य हीन संहनन वाले, भ्रष्ट आचरण करने वाले होते हैं। इस काल के मनुष्य कर्म को नष्ट कर मोक्ष नहीं जा सकते हैं। अधिकतर मनुष्य दु:ख के भोगने वाले होते हैं।

प्रश्न - छठें काल में मनुष्य किस प्रकार के होंगे ?

उत्तर - छठें काल के मनुष्य धर्म कर्म से रहित होंगे। दया, क्षमा, व्रत आदि गुणों का नाम भी नहीं रहेगा, सभी मनुष्य मांसाहारी होंगे। काल के अन्त में मनुष्य एक हाथ के लम्बे शरीर वाले होंगे और मनुष्य बड़े पापी, नंगे, शरीर का वर्ण काला, गूंगे, बहरे और अंधे तथा कुरूप व पशु के समान स्वभाव वाले होंगे।

प्रश्न - छठें काल के अन्त में किस प्रकार का वातावरण होगा ?

उत्तर - छठें काल के उनच्चास दिन शेष रहने पर क्रमश: शीत, क्षार, विष, वज्र अग्नि, धूल और धूम्र इस प्रकार की सात प्रकार की सात-सात दिन तक भयंकर वर्षायें होंगी, जिससे सारी पृथ्वी पर महान प्रलय हो जायेगा। एक एक योजन तक पृथ्वी जल जायेगी, जल और अग्नि से पृथ्वी भस्म हो जायेगी। इस महाप्रलय से अत्यधिक जीव मर जायेंगे।

प्रश्न - उत्सर्पिणी काल का प्रारंभ कब से होगा ?

उत्तर - श्रावण कृष्णा प्रतिपदा से उत्सर्पिणी काल का प्रारंभ होगा। इस उत्सर्पिणी काल के प्रारंभ से उनच्चास दिन तक सात तरह की वर्षायें होगी। जैसे - जल, दूध,

घृत, अमृत, सुगंधित पवन आदि की सात सप्ताह तक शुभ वर्षायें होंगी। उससे सभी जगह शांति स्थापित होगी। वह दिन भाद्र शुक्ला पंचमी का होगा।

प्रश्न - हुण्डावसर्पिणी काल कब आता है ?

उत्तर - असंख्यात अवसर्पिणी काल के बीतने पर एक हुण्डावसर्पिणी काल आता है, इस काल में कुछ विशेष घटनायें होती हैं।

प्रश्न - हुण्डावसर्पिणी काल में किस प्रकार की घटनायें घटी थीं ?

उत्तर - हुण्डावसर्पिणी काल में निम्न घटनायें घटी थीं। यथा - (१) तीर्थंकर ऋषभदेव भगवान के पुत्रियाँ हुई थीं। (२) सुपार्श्वनाथ, पार्श्वनाथ और महावीर भगवान के ऊपर उपसर्ग हुआ था। (३) तीर्थंकरों के जन्म और मोक्ष-अयोध्या और सम्मेद शिखर के सिवाय अन्य क्षेत्रों से हुए। (४) भरत चक्रवर्ती का मान खण्डित हुआ। (५) त्रेशठशला के पुरुषों में कमी हुई थी। इत्यादि असंभव घटनायें घटी थीं।

प्रश्न - अवसर्पिणी काल में मनुष्यों के शरीर की ऊँचाई कितनी होती है ?

उत्तर - अवसर्पिणी काल के प्रथमकाल में मनुष्यों के शरीर की ऊँचाई तीन कोस की, दूसरे काल में दो कोस की, तीसरे काल में एक कोस की, चतुर्थ काल के प्रारंभ में मनुष्यों के शरीर की ऊँचाई पाँच सौ धनुष की, पाँचवें काल में सात हाथ तथा छठें काल के अन्तिम समय में मनुष्य के शरीर की ऊँचाई एक हाथ की रहेगी।

प्रश्न - अवसर्पिणी काल में मनुष्यों के शरीर का वर्ण (रंग) कैसा होता है ?

उत्तर - पहले काल में मनुष्यों के शरीर का वर्ण उगते हुए सूर्य के समान था, दूसरे काल में चन्द्रमा के समान उज्ज्वल सफेद कांति युक्त वर्ण वाले मनुष्य थे, तीसरे काल में मनुष्यों के शरीर का वर्ण हरित और श्याम वर्ण के समान थे, चतुर्थ काल में पाँच वर्ण वाले मनुष्य होते हैं, पाँचवें काल के मनुष्य भी पाँच वर्ण के होते हैं और वे कांति व तेज रहित होते हैं, छठें काल में धुएं के समान काले वर्ण वाले कुरूप मनुष्य होंवेंगे।

प्रश्न - षट् कालों में मनुष्यों की आयु कितनी होती है ?

उत्तर - मनुष्यों की आयु पहले काल में तीन पल्य की थी, दूसरे काल में दो पल्य की थी, तीसरे काल में एक पल्य की थी, चौथे काल के प्रारंभ में एक कोटि पूर्व की आयु थी, पाँचवें काल में एक सौ बीस वर्ष की आयु है और छठें काल के अंतिम समय में केवल पन्द्रह वर्ष की आयु होगी।

भरत और ऐरावत क्षेत्र में इन छह भेदों सहित उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी का परिवर्तन होता रहता है। असंख्यात अवसर्पिणी बीत जाने के बाद एक हुण्डावसर्पिणी काल होता है। अभी हुण्डावसर्पिणी काल चल रहा है।

भरत और ऐरावत क्षेत्र के म्लेच्छ खण्डों तथा विजयार्ध पर्वत की श्रेणियों में अवसर्पिणी काल के चतुर्थ काल के आदि से लेकर अन्त तक परिवर्तन होता है। और उत्सर्पिणी काल के समय तृतीयकाल के अन्त से लेकर आदि तक परिवर्तन होता है। इनमें आर्यखण्डों की तरह छहों कालों का परिवर्तन नहीं होता और न इनमें प्रलयकाल ही पड़ता है।

प्रश्न - विजयार्ध पर्वत कहाँ पर है ?

उत्तर - भरत क्षेत्र के बीच में विजयार्ध पर्वत है, वह पच्चीस योजन ऊँचा और मूल में इससे दूना विस्तार वाला है।

प्रश्न - भरत क्षेत्र के छः खण्ड किस प्रकार होते हैं ?

उत्तर - विजयार्ध पर्वत के कारण भरत क्षेत्र के दो भाग हो जाते हैं। एक उत्तर भाग दूसरा दक्षिण भाग। प्रत्येक भाग की नदियों से तीन तीन खण्ड होते हैं। इस प्रकार भरत क्षेत्र के उत्तर में तीन और दक्षिण में तीन ये छः खण्ड होते हैं। विजयार्ध के उत्तर में तीनों म्लेच्छ खण्ड हैं और दक्षिण में दो म्लेच्छ खण्ड और एक बीच में आर्य खण्ड है।

प्रश्न - चक्रवर्ती अपने नाम कौन से पर्वत पर लिखते हैं ?

उत्तर - चक्रवर्ती अपने नाम वृषभाचल पर्वत पर लिखते हैं।

अन्यभूमियों की काल-व्यवस्था

ताभ्या-मपरा भूमयोऽवस्थितः ॥२८॥

अर्थ- (ताभ्याम्) उन भरत और ऐरावत क्षेत्र से (अपराः) अन्य (भूमयः) क्षेत्र (अवस्थितः) घटती बढ़ती रहित (भवन्ति) होते हैं। उनमें काल का परिवर्तन अथवा हानि और वृद्धि नहीं होती है।

विशेषार्थ- हेमवत और हैरण्यवतक्षेत्र में तीसरा काल, हरि और रम्यक क्षेत्र में द्वितीय काल, देवकुरु और उत्तरकुरु (विदेह के अन्तर्गत) क्षेत्र में प्रथम सदैव चलता है।

हैमवत आदि क्षेत्रों में आयु

एकद्वित्रि पल्योपमस्थितयो हैमवतक-हारिवर्षकदैवकुरवकाः ॥२९॥

अर्थ- (हैमवतक) हैमवत, (हारि) हरि और (देवकुरवकाः) देवकुरु (विदेह क्षेत्र के अन्तर्गत एक विशेष स्थान) के निवासी मनुष्य वा तिर्यञ्चों की आयु क्रम से (एकद्वित्रिपल्योपमस्थितयः) एक पल्य, दो पल्य और तीन पल्य की (भवति) होती है।

विशेषार्थ- हैमवत क्षेत्र के प्राणियों की स्थिति एक पल्य प्रमाण होती है। यहाँ निरन्तर उत्सर्पिणीकाल का चौथा या अवसर्पिणीकाल का तीसरा काल प्रवर्तता है। मनुष्यों के शरीर की ऊँचाई दो हजार धनुष होती है। रंग नीलवर्ण होता है और वे एक दिन के अन्तराल से भोजन करते हैं।

हरिवर्ष क्षेत्र के प्राणियों की स्थिति दो पल्य प्रमाण होती है। यहाँ निरन्तर उत्सर्पिणीकाल का पाँचवाँ या अवसर्पिणीकाल का दूसरा काल प्रवर्तता है। मनुष्यों के शरीर की ऊँचाई चार हजार धनुष होती है। रंग शुक्ल होता है और वे दो दिन के अन्तराल से भोजन करते हैं।

देवकुरु क्षेत्र के प्राणियों की स्थिति तीन पल्य प्रमाण होती है। यहाँ निरन्तर उत्सर्पिणीकाल का छठा और अवसर्पिणीकाल का पहला काल प्रवर्तता है। मनुष्यों के शरीर की ऊँचाई छह हजार धनुष होती है, रंग पीत होता है और वे तीन दिन के अन्तराल से भोजन करते हैं।

हैरण्यवत आदि क्षेत्रों में आयु

तथोत्तराः ॥३०॥

अर्थ- उत्तर के क्षेत्रों के मनुष्यों और तिर्यञ्चों की आयु हैमवत आदि क्षेत्रों के मनुष्यों वा तिर्यञ्चों के समान होती है।

विशेषार्थ- उत्तरकुरु में आयु आदि देवकुरु के समान, रम्यक में हरिवर्ष के समान और हैरण्यवत में हैमवत के समान काल है। विदेहक्षेत्र की चर्चा सूत्र नं ३१ में की है।

इस प्रकार उत्तम, मध्यम और जघन्यरूप तीनों भोगभूमियों के दो-दो क्षेत्र हैं। जम्बूद्वीप में छह भोगभूमियाँ, धातकीखण्ड में बारह भोगभूमियाँ और पुष्करार्ध में भी बारह भोगभूमियाँ हैं। इस प्रकार अढाई द्वीप में कुल ३० भोगभूमियाँ हैं। जिसमें सब तरह की भोगोपभोग की सामग्री कल्पवृक्षों से प्राप्त होती हैं अथवा जहाँ भोगों की ही प्रधानता होती है उसे भोगभूमि कहते हैं।

विदेह क्षेत्र में आयु

विदेहेषु संख्येय-कालाः ॥३१॥

अर्थ- (विदेहेषु) विदेह क्षेत्र में मनुष्यों और तिर्यञ्चों की आयु (संख्येयकालाः) संख्यात वर्ष की होती है।

विदेह क्षेत्र में उत्सर्पिणीकाल का तीसरा या अवसर्पिणीकाल का चौथा काल सदा अवस्थित है। इसमें मनुष्यों की ऊँचाई पाँच सौ धनुष प्रमाण होती है और उत्कृष्ट

आयु एक पूर्व कोटि प्रमाण होती है। प्राय: इसी काल से जीव मुक्ति लाभ करते हैं। विदेह क्षेत्र में यह काल सदा रहता है इसलिये यहाँ से जीव हमेशा मोक्ष जाते हैं।

प्रश्न - विदेह क्षेत्र कहाँ पर है ?

उत्तर - निषध पर्वत के उत्तर में और नील पर्वत के दक्षिण में अर्थात् इन दोनों पर्वतों के मध्य में सबसे बड़ा विदेह क्षेत्र है। यह जम्बूद्वीप के बीच के हिस्से से बड़ा है।

प्रश्न- विदेह क्षेत्र में हमेशा क्या होता रहता है ?

उत्तर - विदेह क्षेत्र में हमेशा चौथा काल रहता है। जिससे वहाँ नित्य तीर्थंकर, चक्रवर्ती, केवली, नारायण, ऋद्धिधारी मुनि, बलदेव, मण्डलीक, अर्धमण्डलीक आदि राजा होते ही रहते हैं। तथा मोक्ष की प्राप्ति भी होती रहती है।

भरत क्षेत्र का विस्तार

भरतस्य विष्कम्भो जम्बूद्वीपस्य नवति-शत-भाग: ॥३२॥

अर्थ- (भरतस्य विष्कम्भ:) भरतक्षेत्र का विस्तार (जम्बूद्वीपस्य) जम्बूद्वीप के (नवतिशतभाग:) एक सौ नब्बे वाँ भाग है।

विशेषार्थ - २४ वें सूत्र में भरतक्षेत्र का जो विस्तार बलताया है उसमें और इसमें कोई अन्तर नहीं है। केवल कथन करने का प्रकार दूसरा है। यदि एक लाख के बराबर एक सौ नब्बे हिस्से किये जावें तो उनमें हर एक हिस्से का प्रमाण ५२६.६/१९ योजन होता है।

धातकीखण्ड द्वीप की रचना

द्विर्धातकी-खण्डे ॥३३॥

अर्थ- धातकीखण्ड नामक दूसरे द्वीप में क्षेत्र, कुलाचल, मेरु, नदी आदि समस्त पदार्थ जम्बूद्वीप से दूने-दूने हैं।

विशेषार्थ- धातकीखण्ड में दो मेरु, चौदह क्षेत्र, बारह पर्वत, बारह तालाब और अट्ठाईस नदी इत्यादि हैं। इन सबके नाम भी वे ही है जो जम्बूद्वीप में बतलाये हैं। केवल मेरु पर्वतों के नाम भिन्न हैं।

मानुषोत्तर पर्वत के बाद जितने भी द्वीप और समुद्र हैं उनमें जघन्य भोगभूमि, स्वयम्भूरमणद्वीप के स्वयंप्रभाचलपर्वत के पूर्व तक भोगभूमि तथा उसके बाद द्वीप तथा समुद्र कर्मभूमि हैं।

ातकीखण्ड द्वीप वलयाकृति है। इसके पूर्वार्ध और पश्चिमार्ध-इस प्रकार दो विभाग हैं। यह विभाग इष्वाकार नामवाले दो पर्वत करते हैं जो उत्तर से दक्षिण तक द्वीप के विष्कम्भ प्रमाण, लम्बे हैं। इससे धातकीखण्ड द्वीप के दो भाग होकर प्रत्येक

भाग में एक मेरु, सात क्षेत्र, छह वर्षधर, चौदह नदियाँ और छह हद प्राप्त होते हैं। इस प्रकार ये सब जम्बूद्वीप से धातकीखण्ड द्वीप में दूने हो जाते हैं। इस द्वीप में पर्वत पहिये के आरे के समान हैं और क्षेत्र आरों के बीच में स्थित विवर के समान हैं।

पुष्कर द्वीप का वर्णन

पुष्करार्द्धे च ॥३४॥

अर्थ- पुष्कर द्वीप के आधे भाग में भी क्षेत्र और पर्वत आदिक की सब रचना जम्बूद्वीप से दूनी दूनी है।

विशेष - धातकीखण्ड द्वीप के समान पुष्करार्ध में भी मेरु, वर्ष, वर्षधर, नदी और ह्रदों की संख्या है, क्योंकि इस द्वीप के भी इष्वाकार पर्वतों के निमित्त से पूर्वार्ध और पश्चिमार्ध - ये दो भाग हो गये हैं। इस प्रकार ढाई द्वीप में पाँच मेरु, पैंतीस क्षेत्र, तीस वर्षधर, सत्तर महानदियाँ और तीस ह्रद प्राप्त होते हैं।

पुष्करवर द्वीप का विस्तार १६ लाख योजन है। उसके ठीक बीच में चूड़ी के आकार मानुषोत्तर पर्वत है। जिसमें इस द्वीप के दो हिस्से हो गये हैं। पूर्वार्ध में सब रचना धातकीखण्ड के समान है और जम्बूद्वीप से दूनी-दूनी है। इस द्वीप के उत्तरकुरु में एक पुष्कर (कमल) है। इसलिये इसे पुष्करवर कहते है। इस प्रकार जम्बूद्वीप और लवणसमुद्र आदि का विस्तार पैंतालीस लाख योजन होता है।

विदेहों का विशेष वर्णन : जम्बूद्वीप में विदेह क्षेत्र का विस्तार ३३६८४$\frac{४}{१९}$ योजन है और मध्य में लम्बाई एक लाख योजन है। ठीक बीच में मेरु पर्वत है। इसके पास से दो गजदन्त पर्वत निकलकर निषध में जा मिले हैं। इसी प्रकार उत्तर में दो गजदन्त पर्वत नील में जा मिले हैं, इससे विदेह क्षेत्र चार भागों में बँट जाता है। दक्षिण दिशा में गजदन्तों के मध्य का क्षेत्र देवकुरु और उत्तर दिशा में यही क्षेत्र उत्तरकुरु कहलाता है। तथा पूर्व दिशा का सब क्षेत्र पूर्व विदेह और पश्चिम दिशा का सब क्षेत्र पश्चिम विदेह कहलाता है। इनमें से देवकुरु और उत्तरकुरु में उत्तम भोगभूमि है तथा पूर्व विदेह और पश्चिम विदेह में कर्मभूमि है।

प्रश्न - पाँचों विदेह के उपविदेह कितने और किस प्रकार होते हैं ?

उत्तर - पूर्व विदेह और पश्चिम विदेह में सीता और सीतोदा नदी के किनारों पर चार-चार विदेह होते हैं, एक-एक विदेह के आठ-आठ भाग होते हैं। इस प्रकार जम्बूद्वीप में सब मिलाकर बत्तीस विदेह होते हैं। धातकीखण्ड और पुष्कारार्ध द्वीप में चौसठ-चौसठ विदेह होते हैं। इस प्रकार ढाई द्वीप में कुल मिलाकर एक सौ साठ विदेह होते हैं।

पुष्करार्ध संज्ञा का कारण : पुष्करवर द्वीप के ठीक मध्य में वलयाकार मानुषोत्तर पर्वत स्थित है, जिससे पुष्करवर द्वीप दो भागों में बँट गया है। इन दो भागों में से भीतर के भाग में इन क्षेत्रादिकों की रचना है बाह्य भाग में नहीं, इसलिये इस सूत्र द्वारा पुष्करार्ध में धातकीखण्ड के समान क्षेत्रादिक की रचना का निर्देश किया है।

मनुष्य क्षेत्र

प्राङ् मानुषोत्तरान्मनुष्याः ॥३५॥

अर्थ- (मानुषोत्तरात् प्राक्) मानुषोत्तर पर्वत के पहले अर्थात् अढ़ाई द्वीप में ही (मनुष्याः) मनुष्य (सन्ति) होते हैं।

मानुषोत्तर पर्वत के आगे ऋद्धिधारी मुनि तथा विद्याधर भी नहीं जा सकते।

प्रश्न - मनुष्य लोक किसे कहते हैं ?

उत्तर - मानुषोत्तर पर्वत के शिखर के ठीक बीच में मनुष्य लोक की सीमा निश्चित है। जम्बूद्वीप, धातकीखण्ड और पुष्करार्ध इन ढाई द्वीपों को मनुष्य लोक कहते हैं। पैंतालिस लाख योजन का ढाई द्वीप अर्थात् मनुष्य लोक का विस्तार है।

शंका - क्या ढाई द्वीप के बाहर किसी भी प्रकार से मनुष्य नहीं पाये जा सकते हैं ?

समाधान - ढाई द्वीप के बाहर मनुष्यों के पाये जाने के निम्न प्रकार हैं :-

१. जो मनुष्य मरकर ढाई द्वीप के बाहर उत्पन्न होने वाला है, वह यदि मरण के पहले मारणान्तिक समुद्घात करता है तो ढाई द्वीप के बाहर पाया जाता है।

२. ढाई द्वीप के बाहर निवास करने वाला अन्य गति का जो जीव मरकर मनुष्यों में उत्पन्न होता है, उसके पूर्व पर्याय के छोड़ने के अनन्तर समय में ही मनुष्यायु आदि कर्मों का उदय हो जाता है तब भी वह उपपाद क्षेत्र को प्राप्त होने के पूर्व तक मनुष्यलोक के बाहर पाया जाता है।

३. केवली जिनकी प्रदेश समुद्घात के समय क्रम से सर्वलोक में व्याप्त हो जाते हैं, इस प्रकार केवलिसमुद्घात के समय मनुष्य ढाई द्वीप के बाहर पाया जाता है। ये तीन अवस्थाएँ हैं जब मनुष्य, मनुष्यलोक के बाहर पाये जाते हैं, इन अवस्थाओं को छोड़कर मनुष्यों का मनुष्यलोक से बाहर पाया जाना सम्भव नहीं है।

मनुष्य के भेद

आर्या म्लेच्छाश्च ॥३६॥

अर्थ - मनुष्य के दो भेद हैं - आर्य और म्लेच्छ।

आर्य- जो अनेक गुणों से सम्पन्न होता है तथा गुणी पुरुष जिसकी सेवा करते हैं उसे आर्य कहते हैं।

म्लेच्छ - जो आचार विचार से भ्रष्ट होता है तथा जिसे कर्म का कुछ विवेक नहीं होता उसे म्लेच्छ कहते हैं।

आर्यों के मुख्य दो भेद हैं - ऋद्धि प्राप्त आर्य और ऋद्धि रहित आर्य। जिनके तप आदि से बुद्धि आदिक ऋद्धियाँ उत्पन्न हो जाती हैं वे ऋद्धि प्राप्त आर्य हैं। ऋद्धि रहित आर्य निमित्त भेद से पाँच प्रकार के बतलाये हैं - क्षेत्रार्य, जात्यार्य, चारित्रार्य, कर्मार्य और दर्शनार्य। म्लेच्छ मुख्यता धर्म-कर्म व्यवस्था से रहित होते हैं, इसी से ये म्लेच्छ कहलाते हैं। ये अन्तर्द्वीपज और कर्मभूमिज-इस प्रकार दो तरह के होते हैं। लवणसमुद्र और कालोदसमुद्र के मध्य में स्थित अन्तर्द्वीपों में निवास करने वाले कुभोगभूमिज मनुष्य अन्तर्द्वीपज म्लेच्छ हैं तथा कर्मभूमि में पैदा हुए आर्यसंस्कृति से हीन मनुष्य कर्मभूमिज म्लेच्छ हैं।

कर्म-भूमि के भेद

भरतैरावतविदेहाः कर्म-भूमयोऽन्यत्र देवकुरूत्तरकुरुभ्यः ।।३७।।

अर्थ - पाँचों मेरुसम्बन्धी पाँच भरत, पाँच ऐरावत और देवकुरु उत्तरकुरु को छोड़कर पांच विदेह। इस तरह अढ़ाई द्वीप में कुल पन्द्रह कर्म भूमियाँ हैं।

कर्मभूमि - जहाँ पर असि, मसि, कृषि, वाणिज्य, विद्या, और शिल्प इन छह कर्मों द्वारा आजीविका की जाती है या जहाँ बड़े से बड़ा पापकर्म तथा बड़े से बड़ा पुण्यकर्म अर्जित किया जाता है उसे कर्मभूमि कहते हैं।

पहले ढाई द्वीप में पैंतीस क्षेत्र और छ्यानवे अन्तर्द्वीप बतला आये हैं, उनमें से पाँच भरत, पाँच ऐरावत और पाँच विदेह-ये पन्द्रह क्षेत्र ही कर्मभूमियाँ हैं। इनके सिवा सब क्षेत्र और अन्तर्द्वीप अकर्मभूमि अर्थात् भोगभूमि हैं। देवकुरु और उत्तरकुरु-ये विदेह क्षेत्र के अन्तर्गत हैं। इसीलिये विदेहों में कर्मभूमि की व्यवस्था बतलाने पर इनमें भी वह प्राप्त होती हैं, किन्तु पाँच देवकुरु और पाँच उत्तरकुरु - इन दस क्षेत्रों में कर्मभूमि की व्यवस्था नहीं है, इसलिये प्रस्तुत सूत्र में इन दस भूमियों को कर्मभूमियों से पृथक् बतलाया है।

प्रश्न - ढाई द्वीप में कितनी कर्मभूमियाँ होती हैं ?

उत्तर - ढाई द्वीप में पन्द्रह कर्मभूमियाँ होती हैं- पाँच भरतक्षेत्र में, पाँच ऐरावतक्षेत्र में और पाँच विदेहक्षेत्र में।

प्रश्न - ढाई द्वीप में भोग भूमियाँ कितनी होती हैं ?

उत्तर - ढाई द्वीप में तीस भोगभूमियाँ होती हैं- पाँच हेमवत क्षेत्र की, पाँच हरि क्षेत्र की, पाँच रम्यक क्षेत्र की, पाँच हैरण्यवत क्षेत्र की, पाँच देवकुरु और पाँच उत्तरकुरु जो कि विदेह क्षेत्र के अन्तर्गत हैं इस प्रकार कुल तीस भोगभूमियाँ होती हैं।

मनुष्य की उत्कृष्ट और जघन्य आयु

नृस्थिती परावरे त्रिपल्यो-पमान्तर्मुहूर्ते ॥३८॥

अर्थ - (नृस्थिती) मनुष्यों की (पर) उत्कृष्ट आयु (त्रिपल्योपम) तीन पल्य और (अवरे) जघन्य आयु (अन्तर्मुहुर्ते) अन्तर्मुहूर्त की है।

विशेष - यहाँ उत्कृष्ट मनुष्यों की आयु उत्तम भोगभूमि की अपेक्षा तथा जघन्य आयु कर्मभूमि की अपेक्षा से है ऐसा जानना चाहिए। क्योंकि भोगभूमि में एक करोड़ से कम की आयु नहीं है।

तिर्यञ्चों की आयु

तिर्यग्योनिजानां च ॥३९॥

अर्थ- (तिर्यग्योनिजानां च) तिर्यञ्चों की भी उत्कृष्ट और जघन्य आयु क्रम से तीन पल्य और अन्तर्मुहुर्त की है।

विशेष - मनुष्यों की तरह ही तिर्यञ्चों की आयु समझना चाहिए।

स्थिति के भेद : स्थिति दो प्रकार की हैं - भवस्थिति और कायस्थिति। एक पर्याय में रहने में जितना काल लगे वह भवस्थिति है तथा पुन: पुन: उसी पर्याय में निरन्तर उत्पन्न होना, दूसरी जाति में नहीं जाना, इस प्रकार जितना काल प्राप्त हो वह कायस्थिति है। ऊपर मनुष्यों और तिर्यञ्चों की भवस्थिति बतलाई है।

तिर्यञ्चों की भवस्थिति : निर्यञ्चों में पृथिवीकायिकों की उत्कृष्ट भवस्थित बाईस हजार वर्ष, जलकायिकों की सात हजार वर्ष, अग्निकायिकों की तीन दिनरात, वायुकायिकों की तीन हजार वर्ष, वनस्पतिकायिकों की दस हजार वर्ष, द्वीन्द्रियों की बारह वर्ष, त्रीन्द्रियों की उनचास दिनरात, चतुरिन्द्रियों की छह महीना, पञ्चेन्द्रियों में मछली आदि जलचरों की पूर्वकोटि प्रमाण, गोह व नकुल आदि परिसर्पों की नौ पूर्वाङ्ग, सर्पों की ब्यालीस हजार वर्ष, पक्षियों की बहत्तर हजार वर्ष और चतुष्पदों आदि की तीन पल्योपम उत्कृष्ट भवस्थिति है।

कायस्थिति - पृथिविकायिक, जलकायिक, अग्निकायिक और वायुकायिक जीवों की उत्कृष्ट कायस्थिति असंख्येय लोक प्रमाण है और वनस्पतिकायिक की उत्कृष्ट कायस्थिति अनन्तकाल प्रमाण है जो कि असंख्यात पुद्गल परिवर्तन प्रमाण

स्वरूप व आवलिका के असंख्यात भाग स्वरूप कही जाती है। विकलेन्द्रिय की उत्कृष्ट कायस्थिति असंख्यात हजार वर्ष की है। पंचेन्द्रिय तिर्यञ्च एवं मनुष्यों की उत्कृष्ट कायस्थिति पूर्व कोटि पृथक्त्व अधिक तीन पल्य प्रमाण है। देव और नारकियों की भवस्थिति ही कायस्थिति है।

पल्य - व्यवहार, उद्धार और अद्धापल्य के भेद से पल्य के तीन भेद हैं।

व्यवहार पल्य - प्रमाण-अंगुल से परिमित एक भोजन लम्बे चौड़े गहरे, तीन गड्ढे करने चाहिये और गड्ढों को एक दिन से सात दिन रात्रि तक के भेड़ के बच्चे के रोमों के अतिसूक्ष्म जिनका दूसरा विभाग न हो ऐसे टुकड़ों से कूट-कूट कर भरना चाहिए। पुन: एक-एक सौ वर्ष बाद एक-एक रोम का टुकड़ा गड्ढे में से निकलना चाहिए। जितने समय में वह गड्ढा खाली होगा उतना काल व्यवहार पल्य कहलाता है।

उद्धार पल्य - उन्हीं रोमच्छेदों में से यदि प्रत्येक रोम को असंख्यात करोड़ वर्ष के समयों से छिन्न कर दिया जाय और प्रत्येक समय में एक-एक रोमच्छेद को निकाला जाय तो जितने समय में वह गड्ढा खाली होगा, वह समय उद्धार पल्य का कहलाता है।

अद्धा पल्य - पुन: उद्धार पल्यों के रोमच्छेदों को सौ वर्ष के समयों से छेद करके एक-एक समय में एक-एक रोमच्छेद के निकालने पर जितने समय में वह गड्ढा खाली होगा उतने समय का एक अद्धापल्य कहलाता है।

प्रश्न - मध्यलोक किसके समान है ?

उत्तर - मध्यलोक झालर के समान है।

प्रश्न - मध्यलोक कहाँ तक कहलाता है ?

उत्तर - मध्यलोक चित्रा पृथिवी के ऊपर के भाग से लेकर सुदर्शनमेरु की चोटी तक कहलाता है।

प्रश्न - मध्यलोक का विस्तार कितना है ?

उत्तर - एक राजू लम्बा चौड़ा तथा एक लाख ४० योजन ऊँचाई प्रमाण मध्यलोक का विस्तार होता है।

प्रश्न - मध्यलोक में क्या है ?

उत्तर - इस मध्यलोक की चित्रा पृथिवी के ऊपर असंख्यात द्वीप और समुद्र हैं।

प्रश्न - द्वीप और समुद्रों के मध्य में कौन सा द्वीप है ?

उत्तर - द्वीप और समुद्रों के मध्य एक लाख योजन अर्थात् चालीस करोड़ मील के विस्तार का गोल जम्बूद्वीप है।

प्रश्न - इस द्वीप का नाम जम्बूद्वीप क्यों रखा गया है ?

उत्तर - जम्बूवृक्ष के कारण इस द्वीप का नाम जम्बूद्वीप रखा गया है। इसी जम्बूद्वीप के ठीक बीच में सुदर्शन नामक मेरुपर्वत है।

प्रश्न - पूर्व किसे कहते हैं ?

उत्तर - चौरासी लाख वर्षों का एक पूर्वांग होता है और चौरासी लाख पूर्वांगों का एक पूर्व होता है।

प्रश्न - सुमेरु पर्वत कहाँ पर है ?

उत्तर - विदेह क्षेत्र के ठीक बीच में सुदर्शन नाम का सुमेरु पर्वत है, यह पर्वत सब पर्वतों से बड़ा है, एक हजार योजन पृथ्वी के नीचे इसकी नींव और निन्यानवें हजार योजन पृथ्वी से ऊपर ऊँचा है और चालीस योजन की इसकी चोटी (चूलिका) है, यह चूलिका सौधर्म स्वर्ग के ऋतु विमान से एक बाल के अंतराल में है।

प्रश्न - पाण्डुक शिलाएँ कितनी होती है ?

उत्तर - चार दिशाओं में चार पाण्डुक शिलाएँ होती हैं - (१) पाण्डुक (२) पाण्डुकम्बला (३) रक्ता (४) रक्तकम्बला।

प्रश्न - इन पाण्डुक शिलाओं पर किन तीर्थंकरों का अभिषेक होता है ?

उत्तर - पहली पाण्डुक नाम की शिला पर भरत क्षेत्र के तीर्थंकरों का अभिषेक होता है, दूसरी पाण्डुकम्बला नाम की शिला पर पश्चिम विदेह में उत्पन्न होने वाले तीर्थंकरों का अभिषेक होता है। तीसरी रक्ता नाम की शिला पर ऐरावत क्षेत्र में उत्पन्न होने वाले तीर्थंकरों का अभिषेक होता है और चौथी रक्तकम्बला नाम की शिला पर पूर्व विदेह क्षेत्र के तीर्थंकरों का अभिषेक होता है।

प्रश्न - जिन कलशों से तीर्थंकरों का अभिषेक होता है उन कलशों का प्रमाण कितना होता है ?

उत्तर - पाण्डुक शिला पर जो कलश ढुरते हैं। उन कलशों का मुख एक योजन, उदर चार योजन और अवगाहना आठ योजन प्रमाण होती है।

प्रश्न - चारों पाण्डुक शिलाओं पर कितने-कितने सिंहासन होते हैं और उन पर कौन बैठते हैं ?

उत्तर - चारों पाण्डुक शिलाओं पर चारों दिशाओं में तीन-तीन सिंहासन होते हैं। उनमें बीच के सिंहासन पर जिनेन्द्र भगवान् विराजमान होते हैं और उनके दायें अर्थात् दक्षिण की तरफ सौधर्म इन्द्र विराजमान होता है और उत्तर की तरफ ईशान इन्द्र विराजमान होता है।

प्रश्न - ढाई द्वीप में कितने मेरुपर्वत होते हैं ?

उत्तर - ढाई द्वीप में पाँच मेरुपर्वत होते हैं - (१) सुदर्शन मेरु सबसे ऊँचा व बड़ा है, तथा (२) विजयमेरु, (३) अचलमेरु, (४) मन्दिरमेरु, (५) विद्युन्माली। ये चारों मेरु समान हैं

प्रश्न - पंचमेरु कहाँ-कहाँ है और इनकी ऊँचाई कितनी होती है ?

उत्तर - प्रथम सुदर्शनमेरु जो कि एक लाख योजन ऊँचा है, वह जम्बूद्वीप के विदेह क्षेत्र के बीच में है। धातकीखण्ड द्वीप के बीच में विजयमेरु और अचलमेरु है उसी प्रकार पुष्करार्ध द्वीप में भी मन्दिरमेरु और विद्युन्मालीमेरु है। ये चारों मेरु चौरासी-चौरासी हजार योजन ऊँचे हैं और सब चारों एक समान होते हैं।

प्रश्न - पंचमेरु में अस्सी अकृत्रिम चैत्यालय किस प्रकार होते हैं ?

उत्तर - ढाई द्वीप में पाँच मेरु पर्वत हैं, एक-एक मेरु पर चार-चार वन हैं, एक-एक वन में चार-चार चैत्यालय हैं, इस तरह एक मेरु पर सोलह चैत्यालय हैं, पाँचों मेरुओं को मिलाकर अस्सी अकृत्रिम चैत्यालय होते हैं।

प्रश्न - असंख्यात द्वीप होते हैं, उनमें प्रचलित द्वीप कौन-कौन से हैं ?

उत्तर - असंख्यात द्वीपों में सोलह नाम निम्न प्रकार बताये गये हैं - (१) जम्बूद्वीप, (२) धातकीखण्ड, (३) पुष्करवर, (४) वारुणीवर, (५) क्षीरवर, (६) घृतवर, (७) क्षौद्रवर, (८) नन्दीश्वर, (९) अरुणवर, (१०) अरुणाभास, (११) कुण्डलवर, (१२) शंखवर, (१३) रुचकवर, (१४) भुजंगवर, (१५) कुशवर, (१६) क्रौंचवर। इस प्रकार ये प्रारम्भ के सोलह द्वीपों के नाम हैं।

प्रश्न - समुद्रों के जल का स्वाद किस के समान होता है ?

उत्तर - लवणसमुद्र के जल का स्वाद नमक के समान खारा होता है, क्षीर समुद्र के जल का स्वाद दूध के समान होता है, घृतवरसमुद्र के जल का स्वाद घृत के समान होता है, कालोदधि तथा पुष्करवरसमुद्र एवं स्वयम्भूरमणसमुद्र के जल का स्वाद सामान्य जल के समान होता है, और बाकी के बचे समस्त समुद्रों के जल का स्वाद इक्षुरस अर्थात् गन्ने के रस के समान होता है।

प्रश्न - किन समुद्रों में जलचर जीव होते हैं ?

उत्तर - लवणसमुद्र, कालोदधिसमुद्र, और अन्तिम स्वयम्भूरमणसमुद्र इनमें जलचर जीव होते हैं शेष समस्त समुद्रों में जलचर जीव नहीं होते हैं।

प्रश्न - महामत्स्य की अवगाहना आदि कितनी होती है ?

उत्तर - स्वयंभूरमणसमुद्र में जो महामत्स्य होता है उसके शरीर की लम्बाई एक हजार योजन की एवं ऊँचाई पाँच सौ योजन की तथा चौड़ाई ढाई सौ योजन की होती है। यह महामत्स्य मरकर सातवें नरक में जाता है।

प्रश्न - मध्यलोक के चार सौ अट्ठावन अकृत्रिम चैत्यालय कौन से हैं ?

उत्तर - मध्यलोक के प्रथम जम्बूद्वीप से लेकर तेरहवें रुचकगिरिद्वीप तक चार सौ अट्ठावन अकृत्रिम चैत्यालय होते हैं। यथा-पाँचों मेरु पर्वतों पर अस्सी, तीस कुलाचलों पर तीस, बीस गजदन्त पर बीस, वक्षारगिरि पर अस्सी, इष्वाकारपर्वत पर चार, मानुषोत्तर पर्वत पर चार, विजयार्धपर्वत पर एक सौ सत्तर, जम्बूवृक्ष पर पाँच शाल्मलीवृक्ष पर पाँच, नन्दीश्वरद्वीप में बावन, कुण्डलगिरि पर्वत पर चार रुचकद्वीप के रुचक पर्वत पर चार। इस प्रकार कुल चार सौ अट्ठावन (४५८) अकृत्रिम चैत्यालय होते हैं। प्रत्येक चैत्यालय में एक सौ आठ-एक सौ आठ भव्य जिन प्रतिमायें हैं।

प्रश्न - ढाईद्वीप में अकृत्रिम चैत्यालय कितने होते हैं ?

उत्तर - ढाईद्वीप में तीन सौ अनठानवें (३९८) अकृत्रिम चैत्यालय होते हैं - यथा- नन्दीश्वरद्वीप के बावन, कुण्डलगिरिपर्वत के चार तथा रुचकपर्वत के चार इन साठ अकृत्रिम चैत्यालयों को छोड़कर शेष तीन सौ अनठानवें (३९८) अकृत्रिम चैत्यालय ढाई द्वीप में होते हैं।

प्रश्न - जम्बूद्वीप में अकृत्रिम चैत्यालय कितने होते हैं ?

उत्तर - जम्बूद्वीप में अठत्तर अकृत्रिम चैत्यालय होते हैं - सुदर्शनमेरु सम्बन्धि सोलह, जम्बूवृक्ष और शाल्मलिवृक्ष सम्बन्धि दो, षट्कुलाचल सम्बन्धि छः, गजदन्त सम्बन्धि चार, वक्षारगिरि सम्बन्धि सोलह, और विजयार्धपर्वत सम्बन्धि चौतीस इस प्रकार अठत्तर अकृत्रिम चैत्यालय होते हैं।

प्रश्न - धातकीखण्डद्वीप में अकृत्रिम चैत्यालय कितने होते हैं ?

उत्तर - धातकीखण्डद्वीप में एक सौ अट्ठावन (१५८) अकृत्रिम चैत्यालय होते हैं- पूर्व धातकीखण्डद्वीप में विजयमेरु सम्बन्धि सोलह, धातकीवृक्ष और शाल्मलिवृक्ष सम्बन्धि दो, षट् कुलाचल सम्बन्धि छः, गजदन्त सम्बन्धि चार,वक्षारगिरि सम्बन्धि सोलह और विजयार्ध पर्वत सम्बन्धि चौतीस इस प्रकार अठत्तर अकृत्रिम चैत्यालय हुये, पश्चिम धातकीखण्डद्वीप में ये अठत्तरों के साथ इष्वाकार पर्वत के दो मिलाने पर

अस्सी अकृत्रिम चैत्यालय हुये, पश्चिम धातकीखण्डद्वीप में ७८+८०=१५८ अकृत्रिम चैत्यालय होते हैं।

प्रश्न - पुष्करार्धद्वीप में अकृत्रिम चैत्यालय कितने होते हैं ?

उत्तर - पुष्करार्धद्वीप में एक सौ अट्ठावन (१५८) अकृत्रिम चैत्यालय होते हैं- धातकीखण्डद्वीप के समान पूर्व पुष्करार्ध सम्बन्धि अठत्तर तथा पश्चिम पुष्करार्ध सम्बन्धि अस्सी इस प्रकार पुष्करार्ध द्वीप में भी एक सौ अट्ठावन अकृत्रिम चैत्यालय होते हैं।

प्रश्न - नन्दीश्वरद्वीप का विस्तार कितना है ?

उत्तर - नन्दीश्वरद्वीप का विस्तार एक सौ त्रेसठ करोड़ चौरासी लाख योजन है।

प्रश्न - नन्दीश्वरद्वीप का बाह्य विस्तार कितना है ?

उत्तर - नन्दीश्वरद्वीप का बाह्य विस्तार छ: सौ पचपन करोड़ तैंतीस लाख योजन है।

प्रश्न - नन्दीश्वरद्वीप की बाह्यपरिधि कितनी होती है ?

उत्तर - नन्दीश्वरद्वीप की बाह्यपरिधि दो हजार बहत्तर करोड़, तैंतीस लाख, चौवन हजार, एक सौ नब्बे योजन की होती है।

प्रश्न - नन्दीश्वरद्वीप के चारों दिशाओं में कौन सा पर्वत है ?

उत्तर - नन्दीश्वरद्वीप के चारों दिशाओं में एक-एक अंजनगिरि नाम का पर्वत है, वह अंजनगिरि पर्वत इन्द्रनीलमणि या अंजन के समान काला है।

प्रश्न - अंजनगिरि पर्वत की चारों दिशाओं में कितनी वापिकायें होती हैं ?

उत्तर - अंजनगिरि पर्वत की चारों दिशाओं में चार वापिकायें अर्थात् बावडियाँ होती हैं, एक-एक वापीका के बीच में बहुत सुन्दर एक-एक दधिमुख नाम का पर्वत है।

प्रश्न - वापीका के आगे दोनों कोनों पर कौन-कौन से पर्वत हैं ?

उत्तर - प्रत्येक वापीका के आगे के दोनों कोनों पर दो-दो रतिकर नाम के पर्वत हैं।

प्रश्न - नन्दीश्वरद्वीप की एक दिशा में कितने अकृत्रिम चैत्यालय होते हैं ?

उत्तर - नन्दीश्वरद्वीप की एक दिशा में एक अंजनगिरि, चार दधिमुख और आठ रतिकर इस प्रकार एक दिशा में तेरह अकृत्रिम चैत्यालय होते हैं। इस प्रकार चारों दिशाओं में सब बावन अकृत्रिम चैत्यालय होते हैं।

प्रश्न - अंजनगिरि आदि पर्वतों के रंग किसके समान हैं ?

उत्तर - अंजनगिरि सब काले रंग के हैं, दधिमुख सफेद रंग के हैं, रतिकर लाल वर्ण के हैं।

प्रश्न - अंजनगिरि आदि पर्वतों की ऊँचाई कितनी होती है ?

उत्तर - अंजनगिरि पर्वत चौरासी हजार योजन ऊँचे हैं और एक हजार योजन गहरे मूल में हैं तथा दधिमुख पर्वत दस हजार योजन ऊँचे हैं रतिकर पर्वत एक-एक हजार योजन ऊँचे हैं। ये सब पर्वत खड़े ढोल के समान आकार वाले हैं।

प्रश्न - वापिकाओं का विस्तार कितना होता है ?

उत्तर - वापिकाओं का विस्तार चारों कोनों पर बराबर एक-एक लाख योजन का होता है। अर्थात् इनकी लम्बाई चौड़ाई बराबर होती है। गहरी एक हजार योजन होती है।

प्रश्न - नन्दीश्वरद्वीप के प्रत्येक जिनमन्दिर में कितने गर्भ गृह होते हैं ?

उत्तर - नन्दीश्वरद्वीप के प्रत्येक जिनमन्दिर में एक सौ आठ गर्भ गृह होते हैं। उनमें एक सौ आठ भव्य रत्नमयी जिन प्रतिमाएँ होती हैं।

प्रश्न - भव्य रत्नमयी प्रतिमायें किस प्रकार की होती हैं ?

उत्तर - प्रत्येक प्रतिमा पाँच सौ धनुष ऊँची पद्मासन युक्त होती हैं वे प्रतिमायें अत्यन्त सुन्दर व दिव्य होती हैं, उनके नख और मुख लाल मणि के हैं और भौंहें तथा आँखें सफेद और काली मणियों की हैं। प्रतिमाओं के सिर के बाल काले हैं, मुख की आकृति हँसती हुई अद्भुत है। करोड़ों सूर्य और चन्द्रमा की कान्ति को दबा देने वाली कांति युक्त प्रतिमायें अवर्णनीय महिमा वाली होती हैं।

प्रश्न - नन्दीश्वरद्वीप के अकृत्रिम चैत्यालय में देवगण पूजा कब करते हैं ?

उत्तर - नन्दीश्वरद्वीप के अकृत्रिम चैत्यालयों में देवगण कार्तिक, फाल्गुन और आषाढ़ माह के अन्तिम आठ दिनों में आकर इन अद्भुत जिन प्रतिमाओं की अष्ट द्रव्य आदि विविध द्रव्यों से पूजा, अर्चा व वंदना करते हैं।

प्रश्न - देवगण एक दिन में कितनी बार पूजन करते हैं ?

उत्तर - देवगण प्रत्येक आष्टाह्निक पर्व में आते हैं और अष्टमी से पूर्णमासी तक (१) पूर्वाह्न, (२) अपराह्न, (३) पूर्वरात्रि और (४) पश्चिमरात्रि इस प्रकार चार समय बड़ी भक्ति भाव भजन, साज व नृत्य के साथ पूजन करते हैं, पश्चात् सब प्रदक्षिणा देते हैं।

॥ इति तत्त्वार्थसूत्रे (मोक्षशास्त्रे) तृतीयोऽध्यायः ॥३॥

❁❁❁

तन पाया तो तप करो, करो कर्म का नाश।
रवि शशि से अधिक है, तुममें दिव्य प्रकाश ॥

चतुर्थ अध्याय

देवों के भेद

देवाश्चतुर्णिकाया: ॥१॥

अर्थ - (देवा:) देव (चतुर्णिकाया:) चार जाति वाले (सन्ति) हैं। अर्थात् देवों के चार भेद हैं। भवनवासी, व्यन्तर, ज्योतिष्क और वैमानिक।

देव - देवगति नामकर्म के उदय से जो नानाद्वीप, समुद्र तथा पर्वत आदि रमणीय स्थानों में क्रीड़ा करते हैं उन्हें देव कहते हैं।

प्रश्न - ऊर्ध्वलोक किसके समान होता है ?

उत्तर - ऊर्ध्वलोक मृदंग अर्थात् तबलों के आकार का होता है।

प्रश्न - ऊर्ध्वलोक किसे कहते हैं ?

उत्तर - जहाँ पर इन्द्र और अहमिन्द्र रहते हैं और जो निरंतर सांसारिक सुख भोगते हैं उसे ऊर्ध्वलोक कहते हैं।

भवनत्रिक देवों के लेश्या का विभाग

आदितस्-त्रिषु पीतान्त-लेश्या: ॥२॥

अर्थ- (आदितस्त्रिषु) पहले के तीन निकायों में (पीतान्तलेश्या:) पीतान्त अर्थात् कृष्ण, नील, कापोत और पीत ये चार लेश्याएँ (सन्ति) होती हैं।

विशेषार्थ - यों तो भवनवासी, व्यन्तर और ज्योतिषी देवों के सदा एक पीत लेश्या ही पाई जाती है, किन्तु ऐसा नियम है कि कृष्ण, नील और कापोत लेश्या के मध्यम अंश के साथ मरे हुए कर्मभूमियाँ मिथ्यादृष्टि मनुष्य और तिर्यञ्च और पीत लेश्या के मध्यम अंश के साथ मरे हुए भोगभूमियाँ मिथ्यादृष्टि मनुष्य और तिर्यञ्च भवनत्रिक में उत्पन्न होते हैं, इसलिये इनके अपर्याप्त अवस्था में कृष्ण, नील और कापोत-ये तीन अशुभ लेश्याएँ भी पाई जाती हैं। इसी से इनके पीत तक चार लेश्याएँ बतलाई हैं। अभिप्राय यह है कि भवनवासी, व्यन्तर और ज्योतिषी देवों के अपर्याप्त अवस्था में कृष्ण आदि चार लेश्याएँ और पर्याप्त अवस्था में एक पीत लेश्या पाईं जाती हैं।

यह वर्णन भावलेश्या का है। द्रव्य लेश्या तो पीत ही होती है। यथा कोई जीव अशुभ लेश्या से मरण करके देवगति में गमन करता है, तो अपर्याप्त दशा में देवों के वही लेश्या होती है जिस लेश्या से उसका मरण हुआ है। अत: आदि की तीन लेश्याएं कही गई हैं। परन्तु पर्याप्त दशा में तो मात्र पीत लेश्या ही होती है।

चार निकायों के देवों के प्रभेद

दशाष्ट-पञ्च-द्वादश-विकल्पाः कल्पोपपन्न-पर्यन्ताः ॥३॥

अर्थ- (कल्पोपपन्नपर्यन्ता) सोलहवें स्वर्ग तक के उक्त चार प्रकार के देवों के क्रम से दश, आठ, पांच और बारह भेद हैं।

भावार्थ - भवनवासी देवों के दस, व्यंतर देवों के आठ, ज्योतिषियों के पाँच तथा वैमानिक देवों के इन्द्रों की अपेक्षा बारह भेद होते हैं।

शंका- वैमानिक देवों के इन्द्रों की अपेक्षा बारह भेद किस प्रकार होते हैं।

समाधान- वैमानिक देवों के मूल भेद दो हैं- कल्पोपन्न तथा कल्पातीत। सोलह स्वर्ग में उत्पन्न होने वाले देवों को कल्पोपपन्न तथा सोलह स्वर्ग से ऊपर उत्पन्न होने वाले देवों को कल्पातीत कहते हैं। प्रारम्भ के चार स्वर्गों में एक-एक इन्द्र होता है तथा अन्तिम चार स्वर्गों में एक-एक इन्द्र होता है। मध्य के आठ स्वर्गों में दो-दो स्वर्गों में एक-एक इन्द्र होता है। अर्थात् पांचवें-छठे स्वर्ग में एक इन्द्र सातवें-आठवें स्वर्ग में एक इन्द्र, नौवें-दशवें स्वर्ग में एक इन्द्र तथा ग्यारहवें-बारहवें स्वर्ग में एक इन्द्र होता है। इस प्रकार सोलह स्वर्गों में बारह इन्द्र होते हैं।

प्रश्न - स्वर्गों में कितने उपेन्द्र (प्रतीन्द्र) होते हैं ?

उत्तर - स्वर्गों में बारह इन्द्र की तरह बारह ही उपेन्द्र होते हैं। इस प्रकार स्वर्गों में कुल चौबीस इन्द्र होते हैं।

चार प्रकार के देवों के सामान्य भेद

इन्द्र-सामानिक-त्रायस्त्रिंश-पारिषदात्मरक्ष-लोक-पालानीक-प्रकीर्णकाभियोग्य-किल्विषिकाश्चैकशः ॥४॥

अर्थ- उक्त चार प्रकार के देवों में (एकशः) प्रत्येक के (इन्द्र) इन्द्र, (सामानिक) सामानिक, (त्रायस्त्रिंश) त्रायस्त्रिंश, (पारिषत्) पारिषद्, (आत्मरक्ष) आत्मरक्ष, (लोकपाल) लोकपाल, (अनीक) अनीक, (प्रकीर्णक) प्रकीर्णक, (आभियोग्य) आभियोग्य और (किल्विषिकाः) किल्विषिक ये दश-दश भेद होते हैं।

इन्द्र - दूसरें देवों में नहीं रहने वाली अणिमा आदि ऋद्धियों से परमैश्वर्य को प्राप्त देवों के स्वामी को इन्द्र कहते हैं।

सामानिक - आयु, शक्ति, परिवार, भोग, उपभोग आदि में इन्द्र के समान किन्तु आज्ञा रूप ऐश्वर्य से रहित देवों को सामानिक कहते हैं।

त्रायस्त्रिंश - जो देव, पिता, मंत्री, पुरोहित या गुरु के समान होते हैं उन देवों को

त्रायस्त्रिंश कहते हैं। एक इन्द्र की सभा में ये देव तैंतीस ही होते हैं।

परिषद्- इन्द्र की सभा के सदस्य देवों को परिषद् कहते हैं।

आत्मरक्ष - अङ्गरक्षक के समान देवों को आत्मरक्ष कहते हैं।

लोकपाल - कोतवाल के समान देवों को लोकपाल कहते हैं।

अनीक - पैदल आदि सात प्रकार की सेना में विभक्त देवों को अनीक कहते हैं।

प्रकीर्णक- नगर निवासी जनता के समान देवों को प्रकीर्णक कहते हैं।

आभियोग्य - हाथी घोड़ा आदि बनकर दासों के समान संवारी आदि के काम आने वाले देवों को अभियोग्य कहते हैं।

किल्विषिक - चाण्डालादि की भांति दूर ही रहने वाले पापी देवों को किल्विषिक कहते हैं। ये भेद प्रत्येक निकाय में होते हैं और इन्द्र के ऐश्वर्य के द्योतक हैं।

व्यन्तरों और ज्योतिषियों में दश भेदों में कमी

त्रायस्त्रिंशलोकपाल-वर्ज्या व्यन्तर-ज्योतिष्का: ॥५॥

अर्थ- (व्यन्तरज्योतिष्का:) व्यन्तर और ज्योतिष्क देवों में (त्रायस्त्रिंशलोक पाल) त्रायस्त्रिंश और लोकपाल ये भेद (वर्ज्या) नहीं होते। अर्थात् शेष आठ भेद ही होते हैं।

देवों में इन्द्रों की व्यवस्था

पूर्वयो र्द्वीन्द्रा: ॥६॥

अर्थ- (पूर्वयो:) भवनवासी और व्यन्तरों के प्रत्येक भेद में (द्वीन्द्रा:) दो इन्द्र (सन्ति) होते हैं।

विशेषार्थ - भवनवासियों के दश भेदों में बीस इन्द्र और व्यन्तरों के आठ भेदों में सोलह इन्द्र होते हैं। तथा दोनों में इतने ही प्रतीन्द्र होते हैं।

देवों के कामसेवन की विधि

काय-प्रवीचारा आ ऐशानात् ॥७॥

अर्थ - (आ ऐशानात्) ऐशान स्वर्ग पर्यन्त के देव अर्थात् भवनवासी, व्यन्तर, ज्योतिष्क और पहले तथा दूसरे स्वर्ग के देव (कायप्रवीचारा:) अपनी-अपनी देवियों के साथ मनुष्यों के समान शरीर से कामसेवन (मैथुन) करते हैं।

शेष स्वर्गों के देवों में कामसेवन की रीति

शेषा: स्पर्श-रूप-शब्द-मन: प्रवीचारा: ॥८॥

अर्थ - (शेषाः) पहिले और दूसरे स्वर्ग से ऊपर के स्वर्गों में क्रमशः देव,देवियों के (स्पर्श) स्पर्श से, (रूप) रूप देखने से, (शब्द) शब्द सुनने से और (मनः) मन में विचारने से (प्रवीचाराः) कामसेवन (कुर्वन्ते) करते हैं।

विशेषार्थ- तीसरे और चौथे स्वर्ग के देव, देवियों के आलिंगनमात्र से, पांचवें, छठें, सातवें, और आठवें स्वर्ग के देव, देवियों का रूप देखने से, नौवें, दशवें, ग्यारहवें और बारहवें स्वर्ग के देव, देवियों के गीत वगैरह के शब्द सुनने से तथा तेरहवें, चौदहवें, पन्द्रहवें और सोलहवें स्वर्ग के देव, देवियों का मन में विचार करने मात्र से तृप्त हो जाते हैं, उनकी कामेच्छा शान्त हो जाती है।

प्रश्न - देवों के द्वारा प्रवीचार किस प्रकार होता है ?

उत्तर - भवनवासी, व्यन्तर और ज्योतिष्क, देवों में तथा पहले व दूसरे स्वर्ग में मनुष्यों की तरह प्रवीचार होता है। तीसरे तथा चतुर्थ स्वर्ग में स्पर्श मात्र से प्रवीचार होता है। पाँचवें, छठें, सातवें तथा आठवें स्वर्गों में परस्पर रूप अवलोकन से प्रवीचार होता है। नवमें, दशवें, ग्यारहवें और बारहवें स्वर्गों में शब्द सुनने मात्र से प्रवीचार होता है। तेरहवें, चौदहवें, पन्द्रहवें और सोलहवें स्वर्गों में मन में चिन्तवन मात्र से प्रवीचार होता है।

यद्यपि देवियाँ दूसरे कल्प तक ही उत्पन्न होती हैं परन्तु नियोगवश वे ऊपर के कल्पों में पहुँच जाती है।

कल्पातीतों में मैथुन का निषेध

परेऽप्रवीचाराः ॥९॥

अर्थ- (परे) सोलहवें स्वर्ग से ऊपर ग्रैवेयिक, अनुदिश और अनुत्तरों के देवों में (अप्रवीचाराः) कामसेवन नहीं होता। कल्पातीत देवों के कामेच्छा ही उत्पन्न नहीं होती और वहाँ देवियाँ भी नहीं होती।

भवनवासियों के दश भेद

भवन-वासिनोऽसुरनाग-विद्युत्सुपर्णाग्नि-वात-स्तनितोदधि-द्वीप-दिक्कुमाराः ॥१०॥

अर्थ - (भवनवासिनः) भवनवासी देवों के असुरकुमार, नागकुमार, विद्युत् कुमार, सुपर्णकुमार, अग्निकुमार, वातकुमार, स्तनितकुमार, उदधिकुमार, द्वीपकुमार और दिक्कुमार ये दश भेद हैं।

इनके वेशभूषा और वार्तालाप वगैरह कुमार की तरह होते हैं इससे इन्हें कुमार कहते हैं। ये देव भवनों में निवास करते हैं इसलिये इन्हें भवनवासी कहते हैं।

असुरकुमार को छोड़कर नौ प्रकार के भवनवासी देव और राक्षस को छोड़कर सात प्रकार के व्यन्तर देव रत्नप्रभा पृथिवी के पहले खरभाग में रहते हैं तथा असुरकुमार और राक्षस, इसी पृथिवी के पंकभाग में रहते हैं। इसके सिवाय व्यन्तर देवों का मध्यलोक में भी कई जगह निवास है।

व्यन्तर देवों के आठ भेद

व्यन्तराः किन्नर-किम्पुरुष-महोरग-गन्धर्व-यक्ष-राक्षस-भूत-पिशाचाः ॥११॥

अर्थ- (व्यन्तराः) व्यन्तर देवों के किन्नर, किम्पुरुष, महोरग, गन्धर्व, यक्ष, राक्षस, भूत और पिशाच ये आठ भेद हैं।

विविध स्थानों के निवासी होने के कारण इन्हें व्यन्तर कहते हैं।

ज्योतिषी देवों के पांच भेद

ज्योतिष्काः सूर्या-चन्द्रमसौ ग्रह-नक्षत्र-प्रकीर्णक-तारकाश्च ॥१२॥

अर्थ - (ज्योतिष्काः) ज्योतिषी देव सूर्य, चन्द्रमा, ग्रह, नक्षत्र और प्रकीर्णक तारे ये पाँच भेद हैं।

ये सब चमकीले होते हैं, इसीलिये इन्हें ज्योतिष्क कहते हैं।

पाँच प्रकार के ज्योतिष्क और उनका निवास स्थान : सूर्य आदि पाँचों प्रकार के ज्योतिष्क ज्योति स्वभाव अर्थात् प्रकाशमान होते हैं, इसलिये ये ज्योतिष्क कहे गये हैं। इस समान भूभाग से सात सौ नब्बे योजन की ऊँचाई से लेकर नौ सौ योजन तक अर्थात् एक सौ दस योजन के भीतर यह ज्योतिष्क समुदाय पाया जाता है।

१. जम्बूद्वीप में दो सूर्य और दो चन्द्रमा हैं, छप्पन नक्षत्र हैं, एक सौ छिहत्तर ग्रह और एक कोड़ाकोड़ी लाख, तैंतीस कोड़ाकोड़ी हजार, नौ कोड़ाकोड़ी सैकड़ा, पचास कोड़ाकोड़ी प्रमाण तारा गण हैं।

२. लवण समुद्र में चार सूर्य, चार चन्द्रमा, एक सौ बारह नक्षत्र, तीन सौ बावन ग्रह, दो कोड़ाकोड़ी लाख सड़सठ कोड़ाकोड़ी हजार नौ सौ कोड़ाकोड़ी तारागण हैं।

३. धातकीखण्ड में बारह सूर्य, बारह चन्द्रमा, तीन सौ छत्तीस नक्षत्र, एक हजार छप्पन ग्रह और आठ लाख कोड़ाकोड़ी सैंतीस सौ कोड़ाकोड़ी तारा हैं।

४. कालोदधि समुद्र में ब्यालीस सूर्य, ब्यालीस चन्द्रमा, एक हजार एक सौ

सड़सठ नक्षत्र, तीन हजार छह सौ छ्यानवे ग्रह, अट्ठाईस कोड़ाकोड़ी लाख, बारह कोड़ाकोड़ी हजार नौ कोड़ाकोड़ी सैकड़ा पचास कोड़ाकोड़ी तारागण हैं।

५. पुष्करार्ध में बहत्तर सूर्य, बहत्तर चन्द्रमा, दो हजार सोलह नक्षत्र, छह हजार तीन सौ छत्तीस ग्रह और अड़तालीस कोड़ाकोड़ी लाख, बावीस कोड़ाकोड़ी हजार, दो कोड़ाकोड़ी सैकड़ा तारा हैं। बाह्य पुष्करार्ध में भी इतने ही ज्योतिषी देव हैं। पुष्करवर समुद्र में इससे चौगुनी संख्या है। उससे आगे प्रत्येक द्वीप समुद्र में दूनी-दूनी है।

नोट - ज्योतिषी देवों का निवास मध्यलोक के सम धरातल से ७९० महायोजन की ऊंचाई से लेकर ९०० महायोजन की ऊंचाई तक ११० महायोजन आकाश में है।

ज्योतिषी देवों का गमन

मेरु-प्रदक्षिणा नित्य-गतयो नृ-लोके॥१३॥

अर्थ - ज्योतिषी देव (नृलोके) मनुष्य लोक में (मेरु-प्रदक्षिणा:) मेरु पर्वत की प्रदक्षिणा देते हुए (नित्यगतय:) हमेशा घूमते रहते हैं।

ये ज्योतिषि देव एक हजार एक सौ इक्कीस योजन दूर से मेरु की प्रदक्षिणा देते हैं।

चर ज्योतिष्क : मनुष्य, मानुषोत्तर पर्वत के भीतर पाये जाते हैं। मानुषोत्तर पर्वत के एक ओर से लेकर दूसरी ओर तक कुल विस्तार पैंतालीस लाख योजन हैं। मनुष्य इसी क्षेत्र में पाये जाते हैं, इसलिये यह मनुष्यलोक कहलाता है। इस लोक में ज्योतिष्क सदा भ्रमण किया करते हैं। इनका भ्रमण मेरु के चारों ओर होता है।

ज्योतिषी देवों से लाभ

तत्कृत: कालविभाग: ॥१४॥

अर्थ - (कालविभाग:) घड़ी घण्टा दिन रात आदि व्यवहारकाल का विभाग (तत्कृत:) उन्हीं गतिशील ज्योतिषी देवों के द्वारा किया जाता है। अर्थात् व्यवहारकाल सूर्य, चन्द्रमा, आदि की गति से जाना जाता है।

विशेषार्थ - यह काल मुहूर्त, दिन-रात, पक्ष, मास, ऋतु, अयन, वर्ष और युग आदि अनेक प्रकार का है। तीस मुहूर्त का एक दिन रात है। पन्द्रह दिन-रात का एक पक्ष है। दो पक्ष का एक मास, दो मास की एक ऋतु, तीन ऋतुओं का एक अयन, दो अयन का एक वर्ष और पाँच वर्ष का एक युग होता है।

मनुष्यलोक के बाहर ज्योतिषी देवों की स्थिति

बहिरवस्थिता: ॥१५॥

अर्थ - (बहिः) मनुष्यलोक (अढ़ाईद्वीप) के बाहर के ज्योतिषी देव (अवस्थिताः) स्थिर हैं। अर्थात् वे गमन नहीं करते।

प्रश्न - पृथ्वी से ज्योतिषी देवों के विमान कितने ऊपर होते हैं ?

उत्तर - चित्रा पृथ्वी से सात सौ नब्बे योजन ऊपर तारों के विमान, आठ सौ योजन ऊपर सूर्य के विमान, आठ सौ अस्सी योजन ऊपर चन्द्रमा के विमान, आठ सौ चौरासी योजन ऊपर नक्षत्रों के विमान, आठ सौ अट्ठासी योजन ऊपर बुध के विमान, आठ सौ इक्यानवें योजन ऊपर शुक्र के विमान, आठ सौ चौरानवें योजन ऊपर बृहस्पति के विमान, आठ सौ सत्तानवें योजन ऊपर मंगल के विमान, नौ सौ योजन ऊपर शनि के विमान हैं। इस प्रकार ज्योतिषी देवों के विमान एक सौ दस योजन में हैं।

प्रश्न - चन्द्रमा का परिवार कितना बड़ा है ?

उत्तर - एक चन्द्रमा के परिवार में अठासी ग्रह, अट्ठाईस नक्षत्र, छ्यासठ हजार नौ सौ पिचत्तर कोड़ाकोड़ी तारे हैं।

प्रश्न - जम्बूद्वीप में कितने चन्द्रमा, सूर्य व तारे होते हैं ?

उत्तर - जम्बूद्वीप में दो चन्द्रमा और दो सूर्य तथा एक लाख तैंतीस हजार नौ सौ पचास कोड़ाकोड़ी तारे होते हैं।

प्रश्न - ढाई द्वीप में कितने सूर्य और चन्द्रमा हैं ?

उत्तर - ढाई द्वीप में एक सौ बत्तीस सूर्य और एक सौ बत्तीस चन्द्रमा होते हैं- जम्बूद्वीप में दो सूर्य और दो चन्द्रमा हैं, लवण समुद्र में चार सूर्य और चार चन्द्रमा हैं, धातकीखण्डद्वीप में बारह सूर्य और बारह चन्द्रमा हैं, कालोदधि समुद्र में व्यालीस सूर्य और व्यालीस चन्द्रमा हैं, तथा पुष्करार्धद्वीप में बहत्तर सूर्य और बहत्तर चन्द्रमा हैं।

वैमानिक देवों का वर्णन

वैमानिकाः ॥१६॥

अर्थ - अब यहाँ वैमानिक देवों का वर्णन शुरु होता है।

विमान - जिसमें रहने वाले जीव विशेष पुण्यशाली माने जाते हैं उसे विमान कहते हैं। विमान में पैदा होने वाले देवों को वैमानिक कहते हैं।

वैमानिक देवों के भेद

कल्पोपपन्नाः कल्पातीताश्च ॥१७॥

अर्थ - वैमानिक देवों के दो भेद हैं - (कल्पोपपन्नाः) कल्पोपपन्न (च) और (कल्पातीताः) कल्पातीत।

७. **अवधिविषय** : ऊपर ऊपर के देवों कें अवधिज्ञान की सामर्थ्य भी बढ़ती गई है। प्रथम और दूसरे कल्प के देव अवधिज्ञान से पहली नरकभूमि तक जानते हैं। तीसरे और चौथे कल्प के देव दूसरी नरकभूमि तक जानते हैं। पाँचवें से आठवें कल्प तक के देव तीसरी नरकभूमि तक जानते हैं। नौवे से लेकर बारहवें कल्प तक के देव चौथी भूमि तक जानते हैं। तेरहवें से लेकर सोलहवें कल्प तक के देव पाँचवीं नरकभूमि तक जानते हैं। नौ ग्रैवेयक के देव छठी नरकभूमि तक जानते हैं। तथा नौ अनुदिश और पाँच अनुत्तरवासी देव पूरी लोकनाड़ी को जानते हैं। इससे ज्ञात होता है कि ऊपर-ऊपर के देवों के अवधिज्ञान की सामर्थ्य अधिक-अधिक है।

प्रश्न - पहले और दूसरे आदि स्वर्गों के देव अवधिज्ञान के माध्यम से कहाँ तक की बात जान सकते हैं ?

उत्तर - पहले और दूसरे स्वर्गों के देव अवधिज्ञान के माध्यम से पहले नरक तक की, तीसरे और चौथे स्वर्गों के देव दूसरे नरक तक की, पाँचवें से आठवें स्वर्ग तक के देव तीसरे नरक तक की, तेरहवें से सोलहवें स्वर्ग तक के देव, पाँचवें नरक तक की, नौ ग्रैवेयिक विमानों के देव छठें नरक तक की, नौ अनुदिश विमानों के देव, सातवें नरक तक की पाँच अनुत्तर विमानों के देव १४ राजू प्रमाण सर्वलोक, की बात जान सकते हैं।

वैमानिक देवों में उत्तरोत्तर हीनता

गति-शरीर-परिग्रहाभिमानतो हीनाः ॥२१॥

अर्थ - गति, शरीर, परिग्रह और अभिमान की अपेक्षा ऊपर ऊपर के वैमानिक देव हीन हीन हैं।

१. **गति** : जिससे प्राणी एक स्थान से दूसरे स्थान को प्राप्त होता है वह गति है। यह गति ऊपर-ऊपर के देवों में कमती-कमती पाई जाती है।

२. **शरीर** : देवों का शरीर वैक्रियिक होता है इसलिये वे अपनी इच्छानुसार उसे छोटा-बड़ा जैसा चाहे कर सकते हैं। तीर्थंकर के जन्मोत्सव के समय जो एक लाख योजन के हाथी का कथन आता है सो वह वैक्रियिक ही रहता है।

४. **अभिमान** : मान कषाय के उदय से उत्पन्न हुआ अहंकार अभिमान कहलाता है। स्थिति, प्रभाव, शक्ति आदि के निमित्त से अभिमान पैदा होता है। परन्तु ऊपर-ऊपर के देवों में कषाय घटती हुई होने के कारण अभिमान भी घटता हुआ ही है।

मन्दकषाय, अल्पसंक्लेश परिणाम, अवधिज्ञान की विशुद्धि, तत्त्वावलोकन

और संवेग परिणामों की उत्तरोत्तर अधिकता होने से अभिमान की हानि होती है।

१. **उच्छ्वास** : उनके श्वासोच्छ्वास का साधारणत: यह नियम है कि जिनकी आयु जितने सागरोपम की होती है वे उतने पक्ष बाद श्वासोच्छ्वास लेते हैं।

२. **आहार** : आहार तो देव भी करते हैं। परन्तु उनका आहार मनुष्य और तिर्यञ्चों सरीखा न होकर मानसिक माना गया है। आहार विषयक विकल्प के होते ही उनके कण्ठ से अमृत झरता है जिससे उनकी तृप्ति हो जाती है।

नोट - सोलहवें स्वर्ग के आगे के देव अपने विमान को छोड़कर अन्यत्र कहीं नहीं जाते हैं।

प्रश्न - स्वर्गादि देवों के शरीर की ऊँचाई कितनी होती है ?

उत्तर - पहले और दूसरे स्वर्गों में देवों के शरीर की ऊँचाई सात अरत्नि (एक इंच कम एक हाथ को अरत्नि कहते हैं।) होती है। तीसरे और चौथे स्वर्ग में छ: अरत्नि पाँचवें, छठवें, सातवें और आठवें स्वर्गों में पाँच अरत्नि, नौवे, दशवे, ग्यारहवें और बारहवें स्वर्गों में चार अरत्नि, तेरहवें और चौदहवें स्वर्गों में साढ़े तीन अरत्नि और पन्द्रहवें तथा सोलहवें स्वर्गों में तीन अरत्नि ऊँचाई है। अधोग्रैवेयिक में ढाई (२.५) अरत्नि, मध्य ग्रैवेयिक में दो अरत्नि, ऊर्ध्व ग्रैवेयिक में डेढ़ अरत्नि तथा नव अनुदिशों में भी डेढ़ अरत्नि ऊँचाई है और पांच अनुत्तरों में एक अरत्नि प्रमाण शरीर की ऊँचाई होती है।

प्रश्न - देवों के कौन सा शरीर होता है ?

उत्तर - देवों का शरीर अत्यन्त दिव्य व वैक्रियिक होता है। उनके शरीर में न तो दुर्गंध होती है और न मल, मूत्र, खून, हड्डी, चर्बी आदि होते हैं।

वैमानिक देवों में लेश्याएँ

पीत-पद्म-शुक्ल-लेश्या द्वि-त्रिशेषेषु ॥२२॥

अर्थ - (द्वित्रिशेषेषु) दो युगलों में, तीन युगलों में, तथा शेष के समस्त विमानों में क्रम से (पीतपद्मशुक्ललेश्या:) पीत, पद्म और शुक्ललेश्याएँ (भवन्ति) होती हैं।

प्रश्न - स्वर्ग के देवों में कौन सी लेश्यायें होती हैं ?

उत्तर - पहले और दूसरे स्वर्ग में पीत लेश्या होती है, तीसरे और चौथे में पीत तथा पद्मलेश्या, पाँचवें से आठवें स्वर्गों में पद्म लेश्या और नौवें से बारहवें स्वर्गों में पद्म और शुक्ल लेश्या, तेरहवें स्वर्ग से नवग्रैवेयिक तक शुक्ल लेश्या तथा अनुदिश और अनुत्तरों में परमशुक्ल लेश्या होती है।

राजवार्तिक कार के अनुसार अनुत्तर विमानों में ही परमशुक्ल लेश्या होती है।

निर्देश, वर्ण, परिणाम, संक्रम, कर्म, लक्षण, गति, स्वामित्व, साधन, संख्या, क्षेत्र, स्पर्शन, काल, अन्तर, भाव और अल्पबहुत्व इन अनुयोगों के द्वारा लेश्याओं का वर्णन करना चाहिए।

विशेष जानकारी राजवार्तिक ग्रन्थ से जानें।

कल्पसंज्ञा कहाँ तक है ?

प्राग्ग्रैवेयकेभ्यः कल्पाः ॥२३॥

अर्थ - (ग्रैवेयकेभ्यः प्राक्) ग्रैवेयकों से पहले-पहले अर्थात् १६ स्वर्ग (कल्पाः) कल्प (कथ्यन्ते) कहलाते हैं। सोलह स्वर्गों में इन्द्रादिक की कल्पना होती है इसीलिए इन्हें कल्प कहते हैं। इनसे आगे नौ ग्रैवेयक, नौ अनुदिश और पांच अनुत्तर विमान कल्पातीत कहलाते हैं। क्योंकि ये सभी अहमिन्द्र होते हैं। अतः इनमें इन्द्र आदि की कल्पना नहीं होती।

लौकान्तिकों का लक्षण

ब्रह्म-लोकालया लौकान्तिकाः ॥२४॥

अर्थ - (ब्रह्मलोकालयाः) ब्रह्मलोक (पाँचवा स्वर्ग) है आलय (निवास स्थान) जिनका ऐसे देव (लौकान्तिकाः) लौकान्तिक देव (कथ्यन्ते) कहे जाते हैं।

विशेषार्थ - ये देव ब्रह्मलोक के अन्त में रहते हैं और एक भवावतारी होते हैं तथा इनके लोक (संसार) का अन्त आ जाता है, इसलिये इन्हें लौकान्तिक कहते हैं। ये द्वादशाङ्ग के पाठी होते हैं, ब्रह्मचारी रहते हैं और तीर्थङ्करों के केवल तपः कल्याणक मात्र में आते हैं। ये 'देवर्षि' भी कहे जाते हैं।

प्रश्न - लौकान्तिक देव किसे कहते हैं ?

उत्तर - पाँचवें ब्रह्म स्वर्ग की दिशा और विदिशाओं के अन्त में जो देव रहते हैं उन्हें लौकान्तिक देव कहते हैं। वे मनुष्य लोक के ऋषियों के समान त्यागी की तरह होते हैं। उनकी देवांगनायें नहीं होती हैं।

प्रश्न - लौकान्तिक देवों में कौन उत्पन्न होते हैं ?

उत्तर - मनुष्य भव में उत्तम कुल में जन्म लेकर सर्वपरिग्रह के त्यागी मुनि होकर जो बहुत काल तक तपश्चर्या करते हैं सुख दुःख शत्रु-मित्र में समभावी होते हैं, शरीर आदि से जो निःस्पृह रहते हैं मुनिव्रत में दृढ़ रहते हैं। ऐसे नग्न दिगम्बर साधु मनुष्य भव को पूर्ण कर लौकान्तिक देव होते हैं।

प्रश्न - लौकान्तिक देवों के शरीर की ऊँचाई कितनी होती है ?

उत्तर - लौकान्तिक देवों के शरीर की ऊँचाई पाँच अरत्नि प्रमाण होती है। ये सब सम्यग्दृष्टि होते हैं। ग्यारह अंग के पाठी होते हैं तथा एक भवावतारी होते हैं।

लौकान्तिक देवों के नाम

सारस्वतादित्य-बह्न्यरुण-गर्दतोय-तुषिताव्या बाधारिष्टाश्च ॥२५॥

अर्थ - लौकान्तिक देवों के सारस्वत, आदित्य, वह्नि अरुण, गर्दतोय, तुषित, अव्याबाध और अरिष्ट ये आठ भेद हैं।

विशेषार्थ - ये ब्रह्म स्वर्ग की ईशान आदि आठ दिशाओं में क्रम से रहते हैं। ये सभी स्वतन्त्र हैं, किसी इन्द्र के आधीन नहीं हैं। सब समान हैं, इनमें कोई छोटा कोई बड़ा नहीं। विषयों से विरक्त रहते हैं इसलिये इन्हें देवर्षि कहते हैं। अन्य देव इनकी बड़ी प्रतिष्ठा करते हैं और जब तीर्थङ्करों को वैराग्य होता है, उस समय उन्हें प्रतिबोधन करने के उद्देश्य से ये देव उनके पास जाते हैं।

सारस्वत देव सात सौ, आदित्य देव सौ, अग्निदेव सात हजार सात, अरणदेव सात हजार सात, गर्दतोय देव नौ हजार नौ, तुषितदेव नौ हजार नौ, अव्यावाध देव ग्यारह हजार ग्यारह, अरिष्ट देव भी ग्यारह हजार ग्यारह हैं।

अनुदिश तथा अनुत्तरवासी देवों में अवतार के नियम

विजयादिषु द्विचरमा: ॥२६॥

अर्थ - (विजयादिषु) विजय, वैजयन्त, जयन्त, अपराजित विमानों के अहमिन्द्र 'द्विचरम' होते हैं। अर्थात् मनुष्य के दो जन्म (भव) लेकर अवश्य ही मोक्ष जाते हैं। अर्थात् विजयादिक से चयकर मनुष्य होते हैं। संयम धारण करके पुन: विजयादिक में जन्म लेते हैं। फिर वहाँ से चयकर मनुष्य होकर मोक्ष जाते हैं।

विजय आदि चार का उत्कृष्ट अन्तर दो सागर से अधिक है। विजयादिक से सौधर्म आदि स्वर्ग में उत्पन्न हों तो दो भव की विवक्षा नहीं है।

विशेषार्थ - सर्वार्थसिद्धि के देव, दक्षिणेन्द्र, सौधर्म स्वर्ग के लोकपाल, सौधर्म इन्द की इन्द्राणी और लौकान्तिक देव ये सभी मनुष्य का एक भव धारण कर मोक्ष जाते हैं।

अनुदिश तथा चार अनुत्तरों के देव एकभव धारण करके भी मोक्ष जा सकते हैं। यहाँ अधिक से अधिक दो भव बतलाये हैं।

तिर्यञ्च का लक्षण

औपपादिक-मनुष्येभ्यः शेषास्तिर्यग्योनयः ॥२७॥

अर्थ - (औपपादिक मनुष्येभ्यः) उपपाद जन्म वाले देव नारकी तथा मनुष्यों से (शेषाः) भिन्न जीव (तिर्यग्योनयः) तिर्यञ्च (सन्ति) हैं। तिर्यञ्च समस्त लोक में व्याप्त हैं परन्तु त्रसजीव त्रसनाली में ही रहते हैं।

भवनवासी देवों की उत्कृष्ट आयु

स्थितिरसुर-नाग-सुपर्ण-द्वीप-शेषाणां सागरोपम-त्रिपल्योपमार्ध-हीनमिताः ॥२८॥

अर्थ - (भवनवासिषु) भवनवासियों में (असुर) असुरकुमार, (नाग) नागकुमार, (सुपर्ण) सुपर्णकुमार, (द्वीप) द्वीपकुमार और शेष ६ कुमारों की (स्थिति) उत्कृष्ट आयु क्रम से (सागरोपम) १ सागर, ३ पल्य तथा (अर्धहीनम् इताः) आधा-आधा पल्य कम अर्थात् २$^{१}/_{२}$ पल्य, २ पल्य और शेष की १$^{१}/_{२}$ पल्य की आयु है।

विशेषार्थ- भवनवासी देवों में असुरकुमार की १ सागर, नागकुमार की ३ पल्य, सुपर्णकुमार की २$^{१}/_{२}$ पल्य और द्वीपकुमार की २ पल्य तथा शेष विद्युत्कुमार, अग्निकुमार, वातकुमार, स्तनिक कुमार, उदधिकुमार, दिक्कुमार की १$^{१}/_{२}$ पल्य की आयु है।

सौधर्म और ऐशान स्वर्ग के देवों की उत्कृष्ट आयु

सौधर्मैशानयोः सागरोपमे अधिके॥२९॥

अर्थ - (सौधर्मैशानयोः) सौधर्म और ऐशान स्वर्ग के देवों की उत्कृष्ट आयु (सागरोपमे) दो सागर से कुछ (अधिके) अधिक है।

प्रश्न - देवों की आयु कुछ अधिक किस अपेक्षा से है ?

उत्तर - जिन जीवों ने सम्यग्दर्शन के साथ ऊपर के स्वर्गों के देवों की आयु बांधी हो वे यदि मरण समय मिथ्यात्व को प्राप्त होकर मरण करते हैं, तो उनकी कुछ अधिक की आयु होगी।

सानत्कुमार और माहेन्द्र स्वर्ग में उत्कृष्ट आयु

सानत्कुमार-माहेन्द्रयोः सप्त॥३०॥

अर्थ - (सानत्कुमारमाहेन्द्रयोः) सानत्कुमार और माहेन्द्र स्वर्ग में देवों की उत्कृष्ट आयु सात सागर से कुछ अधिक है।

ब्रह्म से अच्युत स्वर्ग तक के देवों की उत्कृष्ट आयु

त्रि-सप्त-नवैकादश-त्रयोदश-पञ्चदशभिरधिकानि तु॥३१॥

अर्थ - उपर्युक्त सात सागर में क्रम से (त्रि-सप्त-नव-एकादश-त्रयोदश-पञ्चदशभिः) ३/७/९/११/१३/१५ सागर (अधिकानि तु) जोड़ देने से आगे के छह कल्पयुगलों में देवों की उत्कृष्ट आयु होती है।

विशेषार्थ- ब्रह्म और ब्रह्मोत्तर स्वर्ग में कुछ अधिक १० सागर, लान्तव और कापिष्ट स्वर्ग में कुछ अधिक १४ सागर, शुक्र और महाशुक्र स्वर्ग में कुछ अधिक १६ सागर, सतार और सहस्रार स्वर्ग में कुछ अधिक १८ सागर, आनत और प्राणत स्वर्ग में २० सागर की तथा आरण और अच्युत स्वर्ग मे २२ सागर की उत्कृष्ट आयु होती है।

नोट- सूत्र में तु शब्द का ग्रहण होने से बारहवें स्वर्ग तक के देवों की ही कुछ आधिक की आयु होती है।

ग्रैवेयिक, अनुदिश और अनुत्तरों में उत्कृष्ट आयु

आरणाच्युतादूर्ध्वमेकैकेन नवसु ग्रैवेयिकेषु विजयादिषु सर्वार्थसिद्धौ च॥३२॥

अर्थ - (आरणाच्युतात्) आरण और अच्युत स्वर्ग से (ऊर्ध्वम्) ऊपर (नवसु ग्रैवेयिकेषु) नव ग्रैवेयिकों में नव अनुदिशों में, (विजयादिषु) विजय आदि चार विमानों में तथा (च) और (सर्वार्थसिद्धौ) सर्वार्थसिद्धि विमान में (एकैकेन) एक-एक सागर बढ़ती हुई आयु है।

विशेषार्थ- पहले ग्रैवेयक में २३ सागर, दूसरे में २४ सागर, तीसरे में २५ सागर, चौथे में २६ सागर, पांचवे में २७ सागर, छठे में २८ सागर, सातवे में २९ सागर, आठवे में ३० सागर, नौवे में ३१ सागर, नौ अनुदिशों में ३२ सागर और पांच अनुत्तरों में ३३ सागर की उत्कृष्ट आयु है।

नोट - सूत्र में 'सवार्थसिद्धौ' इस पद को विजयादि से पृथक् कहने से सूचित होता है कि सर्वाथसिद्धि में केवल उत्कृष्ट आयु ही होती है जघन्य नहीं।

सौधर्म और ऐशान स्वर्ग में जघन्यायु

अपरा पल्योपममधिकम्॥३३॥

अर्थ - सौधर्म और ऐशान स्वर्ग में (अपरा) जघन्य आयु (पल्योपमम् अधिकम्) एक पल से कुछ अधिक है।

परतः परतः पूर्वापूर्वाऽनन्तरा॥३४॥

अर्थ- ऊर्ध्वलोक में (पूर्वापूर्वा) पहले-पहले देवों की उत्कृष्ट आयु (परतः

परत:) आगे आगे के देवों में (अनन्तरा) जघन्य आयु है।

विशेषार्थ- सौधर्म और ऐशान स्वर्ग में जो उत्कृष्ट आयु कुछ अधिक दो सागर की है वह सानत्कुमार और माहेन्द्र स्वर्ग में जघन्य आयु है। अर्थात् सानत्कुमार और माहेन्द्र स्वर्ग में जघन्य आयु कुछ अधिक है। इसी प्रकार शेष स्वर्गों में भी जानना चाहिये। सवार्थसिद्धि में जघन्य आयु नहीं होती।

द्वितीयादि नरकों में जघन्य आयु

नारकाणां च द्वितीयादिषु ॥३५॥

अर्थ - (द्वितीयादिषु) दूसरे आदि नरकों में (नारकाणां च) नारकियों की जघन्य आयु भी देवों के समान है। अर्थात् पहले नरक में जितनी उत्कृष्ट आयु है उतनी ही दूसरे नरक में जघन्य आयु है। इसी तरह समस्त नरकों में जानना चाहिये।

प्रथम नरक में जघन्य आयु

दश-वर्ष-सहस्राणि प्रथमायाम् ॥३६॥

अर्थ- (प्रथमायाम्) पहले नरक में नारकियों की जघन्य आयु (दशवर्षसहस्राणि) दस हजार वर्ष (१००००) की है।

भवनवासी देवों में जघन्य आयु

भवनेषु च ॥३७॥

अर्थ - (च) और (भवनेषु) भवनवासी देवों में भी जघन्यायु दश हजार वर्ष की है।

व्यन्तर देवों में जघन्य आयु

व्यन्तराणां च ॥३८॥

अर्थ - (च) और (व्यन्तराणाम्) व्यन्तर देवों की भी जघन्य आयु दशहजार वर्ष की है।

व्यन्तर देवों में उत्कृष्ट आयु

परा पल्योपममधिकम् ॥३९॥

अर्थ - (व्यन्तरेषु) व्यन्तर देवों में (परा) उत्कृष्ट आयु (पल्योपममधिकम्) कुछ अधिक एकपल्य है।

असंख्यात वर्षों का एक पल्य होता है और दश कोड़ाकोड़ी पल्यों का एक सागर होता है।

ज्योतिषी देवों में उत्कृष्ट आयु

ज्योतिष्काणां च ।।४०।।

अर्थ - ज्योतिष्क देवों की उत्कृष्ट आयु कुछ अधिक एकपल्य है।

ज्योतिष्क देवों में जघन्य आयु

तदष्ट-भागोऽपरा ।।४१।।

अर्थ- ज्योतिष्क देवों में जघन्य आयु एक पल्य के आठवें भाग है।

लौकान्तिकानामष्टौ सागरोपमाणि सर्वेषाम् ।।४२।।

अर्थ - (सर्वेषाम्) समस्त (लौकान्तिकानाम्) लौकान्तिक देवों में जघन्य और उत्कृष्ट आयु (अष्टौ सागरोपमाणि) आठ सागर प्रमाण (अस्ति) है।

इन सर्व लौकान्तिक देवों के शरीर का उत्सेध पांच हाथ प्रमाण है और सर्व लौकान्तिक देव शुक्ललेश्या के धारी हैं।

प्रश्न - ऊर्ध्वलोक की रचना किस प्रकार होती है ?

उत्तर - स्वर्गों में दो-दो युगल स्वर्ग अर्थात् आठ युगलों में सोलह स्वर्ग हैं। स्वर्गों के ऊपर ऊपर नवग्रैवेयिक हैं। ग्रैवेयिक के ऊपर नव अनुदिश हैं, (उनमें एक बीच में तथा आठ चारों दिशाओं और विदिशाओं में हैं।) अनुदिश के ऊपर पाँच अनुत्तर विमान हैं, (सर्वार्थसिद्धि बीच में और चार विमान चारों दिशाओं में होते हैं।) इस प्रकार ऊर्ध्वलोक की रचना होती है। इन सबसे ऊपर मोक्ष है।

प्रश्न - सिद्ध शिला कहाँ पर है ?

उत्तर - सर्वार्थसिद्धि विमान के ध्वजदण्ड से बारह योजन ऊँची ईषत्प्राग्भार नाम की आठवीं पृथ्वी है। उसके बीच में पैंतालीस लाख योजन के विस्तार में सिद्ध शिला पर अनन्त सिद्ध भगवान् विराजमान हैं।

प्रश्न - ऊर्ध्वलोक में कितने पटल होते हैं ?

उत्तर - ऊर्ध्वलोक में त्रेसठ पटल होते हैं। उन पटलों में देवों के विमान होते हैं। सोलह स्वर्गों में बावन पटल, नवग्रैवेयिकों में नौ पटल, नव अनुदिशों में एक पटल और पाँच अनुत्तरों में एक पटल होता है इस प्रकार कुल त्रेसठ पटल होते हैं।

प्रश्न - ऊर्ध्वलोक में कितने विमान होते हैं ?

उत्तर - ऊर्ध्वलोक में चौरासी लाख सत्तानवें हजार तेईस विमान होते हैं। प्रत्येक विमान में एक-एक जिनालय होता है, इनकी संख्या भी विमानों के समान होती

है।

प्रश्न - ऊर्ध्वलोक में चौरासी लाख सत्तानवें हजार तेईस विमान किस प्रकार होते हैं ?

उत्तर - सौधर्मस्वर्ग में बत्तीस लाख, ईशानस्वर्ग में अट्ठाईस लाख, सानत्कुमारस्वर्ग में बारह लाख, माहेन्द्र स्वर्ग में आठ लाख, ब्रह्म और ब्रह्मोत्तर स्वर्ग में चार लाख, लान्तव और कापिष्ठ स्वर्ग में पचास हजार, शुक्र और महाशुक्र स्वर्ग में चालीस हजार, शतार और सहस्रार स्वर्ग में छः हजार, आनत, प्राणत, आरण और अच्युत स्वर्गों में सात सौ, तीन अधः ग्रैवेयिकों में एक सौ ग्यारह, तीन मध्यग्रैवेयिकों में एक सौ सात, तीन ऊर्ध्वग्रैवेयिकों में इक्यानवें, नव अनुदिशों में नौ, पाँच अनुत्तरों में पाँच विमान हैं। इस प्रकार ऊर्ध्वलोक में चौरासी लाख सत्तानवें हजार तेईस विमान होते हैं।

प्रश्न - मानस्तम्भ किन स्वर्गों में होते हैं ?

उत्तर - सौधर्मस्वर्ग से चौथे माहेन्द्रस्वर्ग तक इन चार स्वर्गों में बड़े सुन्दर मानस्तम्भ होते हैं। उन मानस्तम्भों में तीर्थंकरों के वस्त्र व आभूषण रखने के रत्नमयी सुंदर पिटारे होते हैं।

प्रश्न - तीर्थंकरों के वस्त्राभूषण किन मानस्तम्भ में होते हैं ?

उत्तर - पहले सौधर्मस्वर्ग के मानस्तम्भ में भरतक्षेत्र के, दूसरे ईशानस्वर्ग के मानस्तम्भ में ऐरावत क्षेत्र के, तीसरे सानत्कुमारस्वर्ग के मानस्तम्भ में पूर्व विदेहक्षेत्र के तीर्थंकरों के और चौथे माहेन्द्रस्वर्ग के मानस्तम्भ में पश्चिम विदेहक्षेत्र के तीर्थंकरों के वस्त्राभूषण होते हैं।

प्रश्न - देवांगनाओं की उत्पत्ति कौन से स्वर्ग तक होती है ?

उत्तर - स्वर्गों की समस्त देवांगनाओं की उत्पत्ति पहले व दूसरे स्वर्ग में ही होती है, अपने अपने स्वर्ग के देव व इन्द्र अपनी-अपनी नियोगिनी (देवांगनाओं) को अपने विमानों में ले जाते हैं।

प्रश्न - कितने विमानों में मात्र देवांगनायें रहती हैं ?

उत्तर - पहले स्वर्ग के छः लाख विमानों में और दूसरे स्वर्ग के चार लाख विमानों में मात्र देवांगनायें ही रहती हैं।

प्रश्न - कितने विमानों में देव और देवांगनायें रहते हैं ?

उत्तर - पहले स्वर्ग के छब्बीस लाख विमानों में एवं दूसरे स्वर्ग के चौबीस लाख विमानों में देव और देवांगनायें रहती हैं।

प्रश्न - स्वर्गों के देव व ग्रैवेयिक के देव क्या कहलाते हैं ?

उत्तर - स्वर्गों के देव कल्पवासी कहलाते हैं और ऊपर के देव कल्पातीत कहलाते हैं। स्वर्ग के ऊपर नवग्रैवेयिक नव अनुदिश पाँच अनुत्तर के विमानों के सब देव अहमिन्द्र कहलाते हैं, उनके वहाँ देवांगनायें नहीं होती, वे सब समान होते हैं।

प्रश्न - सौधर्म और ईशानस्वर्गों के इन्द्र की कितनी देवियाँ होती हैं ?

उत्तर - सौधर्म और ईशानस्वर्गों के इन्द्र की कुल एक लाख साठ हजार देवियाँ और आठ-आठ अग्रदेवियाँ होती हैं।

प्रश्न - स्वर्गों के बारह इन्द्रों में कौन से इन्द्र दक्षिणेन्द्र व उत्तरेन्द्र कहलाते हैं ?

उत्तर - स्वर्गों के बारह इन्द्रों में सौधर्मेन्द्र सानत्कुमार, ब्रह्म, लान्तव, आनत और आरण ये छः दक्षिणेन्द्र तथा ऐशान, माहेन्द्र, शुक्र, शतार, प्राणत और अच्युत ये छः उत्तरेन्द्र कहलाते हैं।

प्रश्न - स्वर्गों के छः दक्षिणेन्द्रों की देवांगनाओं की उत्कृष्ट आयु कितनी होती है ?

उत्तर - स्वर्गों के छः दक्षिणेन्द्रों की देवांगनाओं की उत्कृष्ट आयु क्रम से पाँच पल्य, नौ पल्य, तेरह पल्य, सत्रह पल्य, चौतीस पल्य तथा अड्तालीस पल्य की होती है। ये दक्षिणेन्द्र एक भवावतारी होती है।

प्रश्न - स्वर्गों के छः उत्तरेन्द्रों की देवांगनाओं की उत्कृष्ट आयु कितनी होती है ?

उत्तर - स्वर्गों के छः उत्तरेन्द्रों के देवांगनाओं की उत्कृष्ट आयु क्रम से सात पल्य, ग्यारह पल्य, तेईस पल्य, सत्ताईस पल्य, इकतालीस पल्य और पचपन पल्य की होती है।

प्रश्न - देवों का आहार कितने समय के बाद व कौन सा होता है ?

उत्तर - जिन देवों की आयु एक सागर की होती है उनका एक हजार वर्ष में एक बार दिव्य अमृतमय मानसिक आहार होता है। जिन देवों की जितने सागर की आयु

होती है उतने हजार वर्षों में उनका आहार होता है।

प्रश्न - व्यंतर देवों का आहार कितने समय के बाद होता है ?

उत्तर - व्यंतर देवों का आहार जघन्य रूप से दो दिन के अन्तराल से तथा उत्कृष्ट पाँच दिनों के अंतराल से होता है।

प्रश्न - व्यन्तर देव अवधिज्ञान के माध्यम से कहाँ तक की बात जान सकते हैं ?

उत्तर - व्यन्तर देव अवधिज्ञान के माध्यम से उत्कृष्ट पचास कोस और जघन्य पाँच कोस तक की बात जान सकते हैं।

प्रश्न - देवों के कितने गुणस्थान होते हैं ?

उत्तर - देवों में प्रारम्भ के प्रथम गुणस्थान से लेकर चार गुणस्थान होते हैं।

प्रश्न - एक भवावतारी देव कौन-कौन से होते हैं ?

उत्तर - प्रथम सौधर्म स्वर्ग का इन्द्र तथा उसकी शचि (मुख्य इन्द्राणी), सौधर्मेन्द्र के लोकपाल, छः दक्षिणेन्द्र, पाँचवें ब्रह्म स्वर्ग के अंत में रहने वाले लौकान्तिक देव एवं सर्वार्थसिद्धि के अहमिन्द्र ये सब एक भवावतारी होते हैं। अर्थात् देव पर्याय से चयकर मनुष्य भव पाकर नियम से मोक्ष जाते हैं।

प्रश्न - भवनवासी देवों का बल कितना होता है ?

उत्तर - भवनवासी देवों का बल इतना होता है कि समस्त जम्बूद्वीप को उलट सकें तथा जम्बूद्वीप के समस्त मनुष्य व तिर्यञ्चों को मार सकें या उनकी रक्षा कर सकें।

प्रश्न - भवनवासी देवों में कौन से जीव उत्पन्न होते हैं ?

उत्तर - भवनवासी देवों में मिथ्यात्वी मनुष्य, विनय रहित, झूठ वचन बोलने वाले, हँसी व खुशामद करने वाले, अनेक प्रकार के कौतूहल करने वाले और चापलूसी करने वाले मनुष्य उत्पन्न होते हैं।

प्रश्न - असुरकुमारादि भवनवासी देवों के मुकुटों में किनके चिह्न होते हैं ?

उत्तर - असुरकुमारादि भवनवासी देवों के मुकुटों में क्रमशः चूडामणि, सर्प, गरुड, हाथी, मगर, वर्द्धमान (घड़ा) वज्र, सिंह, कलश और अश्व के चिह्न होते हैं। चैत्यवृक्ष और ध्वजा भी इनके चिह्न हैं।

प्रश्न - भवनत्रिक देवों के शरीर की ऊँचाई कितनी होती है ?

उत्तर - असुरकुमार देवों के शरीर की ऊँचाई पच्चीस धुनष है। शेष नागकुमारादि नौ प्रकार के भवनवासी एवं व्यन्तर देवों के शरीर की ऊँचाई दस धनुष तथा ज्योतिषी देवों के शरीर की ऊँचाई सात धनुष प्रमाण होती है।

॥ इति तत्त्वार्थसूत्रे (मोक्षशास्त्रे) चतुर्थोऽध्यायः ॥४॥

❁❁❁

पंचम अध्याय

अजीव तथा बहुप्रदेशी द्रव्य के भेद व नाम

अजीव-काया धर्माधर्माकाश-पुद्गलाः ॥१॥

अर्थ- (धर्माधर्माकाशपुद्गलाः) धर्म, अधर्म, आकाश और पुद्गल ये चार (अजीवकायाः) अजीव तथा बहुप्रदेशी द्रव्य हैं।

द्रव्यों की गणना

द्रव्याणि ॥२॥

अर्थ - धर्मादिक चार पदार्थ द्रव्य हैं ?

जीव के द्रव्यपना

जीवाश्च ॥३॥

अर्थ - जीव भी द्रव्य है।

विशेषार्थ - यहाँ 'जीवाः' इस बहुवचन से जीवद्रव्य के अनेक भेद सूचित होते हैं। इनके सिवाय ३९ वें सूत्र में कालद्रव्य का भी कथन होगा। इसलिये इन सबको मिलाने पर जीवद्रव्य, पुद्गलद्रव्य, धर्मद्रव्य, अधर्मद्रव्य, आकाशद्रव्य और कालद्रव्य ये छह द्रव्य होते हैं।

द्रव्यों की विशेषता

नित्यावस्थितान्यरूपाणि ॥४॥

अर्थ - ऊपर कहे हुये सभी द्रव्य नित्य, अवस्थित और अरूपी हैं।

भावार्थ - कभी नष्ट नहीं होते, इसलिये नित्य हैं। अपनी छह संख्या का उल्लंघन नहीं करते इसलिये अवस्थित हैं। और रूप, रस, गन्ध तथा स्पर्श से रहित हैं इसलिये अरूपी हैं।